ISSN : 2321-3922
अप्रैल, 2014

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल, 2014

संस्थापक-सह-प्रबंध संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संपादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी. पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्थायी सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री विनय कुमार
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

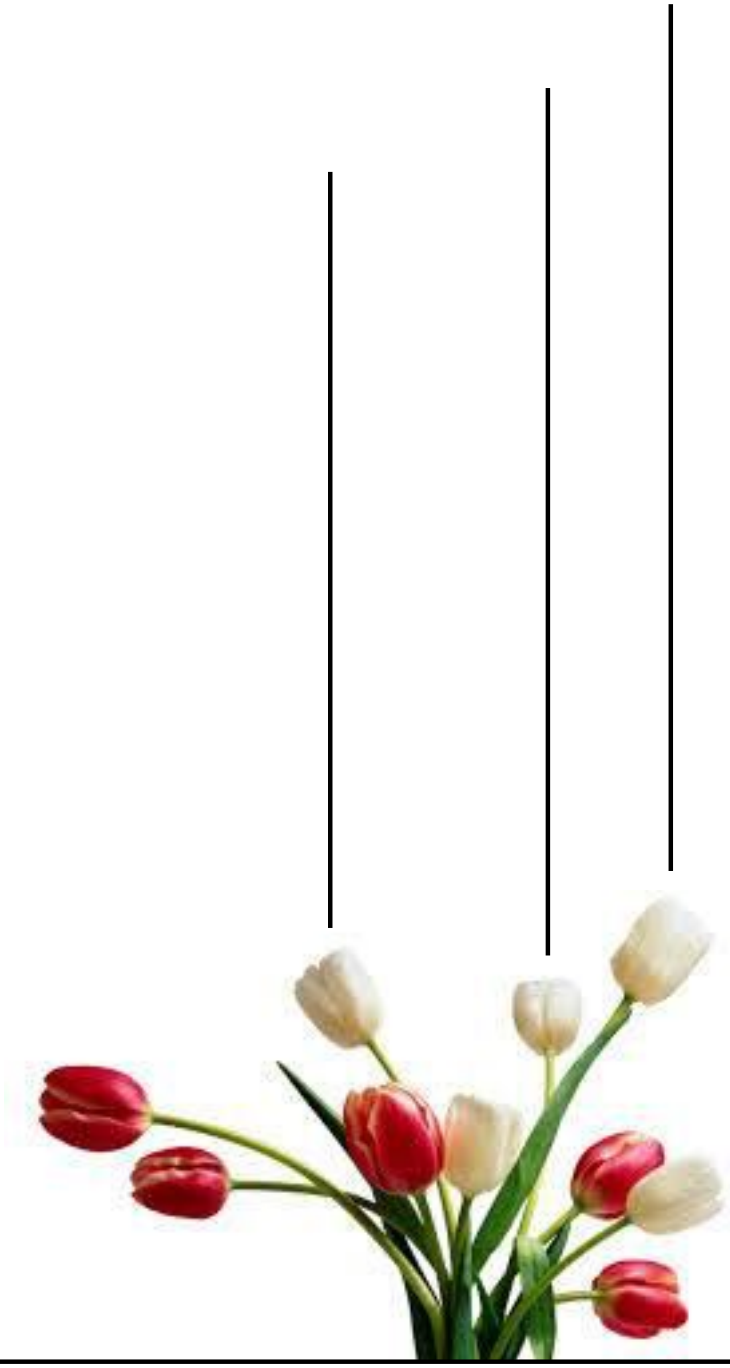

संपर्क : **Sri Dayanad Jayswal**
Mourya Jublilee Place, Zero Mile, Bhagalpur - 813210 (Bihar)
Mob. : 9931240303, 9570838880
Website : www.sambhavya.com
e-mail : dnj.sambhavya@gamil.com

अनुक्रम

क्र. सं.				पृष्ठ संख्या
1.	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से...	दयानन्द जायसवाल	04
2.	शिक्षा का अधिकार	सर्वेक्षण	डॉ. दीपक शर्मा	06
3.	चौड़ाई की कीमत	कविता	सरिता दास	13
4.	सार्थकता	कविता	डॉ. सुनील कुमार परीट	13
5.	कालजयी साहित्यकार : विष्णु प्रभाकर	व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कलानाथ मिश्र	14
6.	मुहब्बत पाटती है दो जहाँ की दूरियाँ	गज़ल	अभिनव अरूण	29
7.	नीलम	कहानी	शतदल मंजरी	20
8.	मैं औरत हूँ	कविता	डॉ. रंजना जायसवाल	25
9.	भारतीय बौद्धिक पुनर्जागरण में हिन्दी भाषा का योगदान	निबंध	मौसम कुमार ठाकुर	26
10.	कवीन्द्र रवीन्द्र : डॉ. बहादुर मिश्र	समीक्षा	दयानन्द जायसवाल	27
11.	गाँव की पगडंडियां	गज़ल	अशोक मिजाज़	31
12.	इन आँखों में देखें...	गज़ल	बच्चू चौधरी 'अकेला'	31
13.	यांत्रिक युग का साहित्य	लेख	डॉ. ऋचा सिंहा	32
14.	तल्ख होती जिन्दगी	कविता	डॉ. अलका अग्रवाल	33
15.	आखिर कब तक	कविता	कुमार मृगांक	33
16.	हेल्थ सेन्टर	लघुकथा	उमाकान्त भारती	34
17.	गर्मी	कविता	मंजुल भटनागर	35
18.	पुकार	कविता	ई. नवनीत पाण्डेय	36
19.	हाल-ए-दिल	गज़ल	शाकिर खान	36
20.	आवरण	आंचलिक कहानी	डॉ. प्रतिभा राजहंस	37
21.	शिक्षा दान : अनुपम काम	कविता	अनामिका कुमारी	39
22.	गाँव की मचान से हिमालय भी छोटा है	कविता	बृजेश नीरज	40
23.	घरौंदा	कविता	मनोज 'कामदेव'	40
24.	ग़ज़ल	ग़ज़ल	अनन्त आलोक	41
25.	ग़ज़ल	ग़ज़ल	सोमवीर 'नामदेव'	41
26.	ग़ज़ल	ग़ज़ल	डॉ. मंजरी पाण्डेय	41
27.	चिंतन-धारा	चिंतन	डॉ. अचल भारती	42
28.	पानी बोले तो क्या बोले	लघुकथा	डॉ. अनुज प्रभात	42
29.	विश्वास	कविता	सुमित्रा पारीक	43
30.	कुबड़ी आधुनिकता	कविता	ई. दीप्ति शर्मा	43
31.	माँ	कविता	संजय कुमार गिरी	44
32.	राजा राम मोहन राय ने भंग किया अंग्रेज कलक्टर का दंभ	आलेख	डॉ. शिव शंकर सिंह	45
33.	लोकवाणी	प्रतिक्रिया	पाठकगण	47

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhaya.com

आमंत्रण

मित्रो,

संभाव्य अंतरराष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो सम्भवत: विश्व की प्रथम नि:शुल्क एवं विज्ञापनरहित पत्रिका है। इस पत्रिका का उद्देश्य विश्व के कण-कण और क्षण-क्षण में आदर्शों और मूल्यों को स्थापित करना है। इस पत्रिका से जुड़ने के लिए न तो कोई सदस्यता शुल्क है और न ही पत्रिका का कोई मूल्य। अनायास ही कहीं से सहयोग राशि मिल जाए तो अच्छी बात होगी।

विदित हो कि वर्तमान समय में विश्वग्राम के 44 देश सहित भारत के 77 शहरो के सहृदय संभाव्य के पाठक हैं। दिन-प्रतिदिन सहृदय पाठकों की बढ़ रही संख्या पत्रिका की लोकप्रियता का प्रमाण है।

इस पत्रिका का ई-संस्करण विश्वग्राम के सभी सदस्यों के लिए नि:शुल्क सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों और हिंदी के विकास के लिए समर्पित संस्था एवं संस्थानों को प्रेषित किया जाता है।

सामाजिक सरोकार से संबंधित समसामयिक समस्याओं और उसके समाधान पर सार्वभौम एवं सार्वजनीन चिंतन करनेवाले साहित्यकारों से आग्रह है कि जुलाई-2014 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएँ अपने पत्राचार के पता साथ मेल करें तथा विश्वग्राम-सौदर्य-संवर्द्धन का सहभागी बनें।

डॉ. जी. पी. सिंह

संपादक, संभाव्य

e-mail : gpsingh@sambhavya.com

Mob. : 9431257315

पुरोवाक्

संस्थापक की कलम से...

सम्पूर्ण हृदय-चेतना द्वारा आज की वास्तविकता के तह में, विश्व-दृष्टि के विकास में, व्यापक जीवन-जगत की व्याख्या में और अन्तर्जगत के महत्त्वपूर्ण आन्दोलन में पत्रकारिता अपनी संवेदना, अनुभव, पीड़ा और अथक श्रम की सहायता से आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहती है कि सामाजिक जागृति का अभाव भी हमारी एक सामाजिक समस्या है। हम जहाँ कुछ भी करते हैं वह अपने लिए करते हैं। न हमें देश का ध्यान है, न तो अपने नगर का और न ही पड़ौस का। हमारे सभी काम अपने संकुचित 'स्व' पर आधारित होते जाते हैं जहाँ परमार्थ और परोपकार का नाम तक नहीं है। समाज-हित हमसे बहुत दूर हो गया है। हमें इस कलुषित मनोवृत्ति का त्याग करना ही होगा, तभी हम एक विश्वग्राम की कल्पना कर सकते हैं।

साहित्य और साहित्यकार समय की विचारधारा से अछूता नहीं रह सकता। जीवन की तरह साहित्य में भी संघर्ष निरंतर चलता रहता है। साहित्य ही वर्तमान को सामने रखकर भविष्य की रूपरेखा तय करता है। समाज की सुसुप्त विवेकशक्ति को जागृत करना साहित्य का बुनियादी लक्ष्य है। यह जनमानस को आलोक स्तम्भ के समान दिशा और प्रकाश देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रेष्ठ साहित्य वही होता है जो अपने भीतर-बाहर सार्वभौमिक मूल्यों, संदेशों एंव उद्देश्यों को समाये रहता है।

मानव सभ्यता के विकास एवं जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए कला-संस्कृति को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है, ताकि समाज में रहते हुए ही मानव में करूणा, सहिष्णुता, भाई चारा, दया और प्रेम जैसे मानवीय गुणों का विकास होता रहे। मानव के विकास में इन मानवीय गुणों की भूमिका अहम होती है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक हुए अनेक युद्धों ने अमानवीय प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। वर्चस्व एवं स्वार्थ की लालसा में मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष जैसे अवगुणों से वशीभूत होकर अनेक प्रकार के अपराध कर बैठता है। अतएव हमें मानवीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना होगा। मनुष्य के जीवन में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् को महत्ता दी जानी चाहिए। मनुष्य ही अपनी संस्कृति का पुनरूद्धार कर सकता है, क्योंकि इसमें असीम संभावनाएँ हैं।

संभाव्य।।

कोई भी तकनीकी, कला, विचार, साहित्यिक चिन्तन, सृजन या समीक्षा उचित है या अनुचित यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका प्रयोग किस रूप में और क्यों किया जा रहा है। यदि सब्जी काटने वाले चाकू का प्रयोग किसी व्यक्ति को चोट पहुँचाने के लिए किया जाय तो इसमें चाकू का क्या दोष है। यदि उसका प्रयोग सब्जी काटने के लिए किया जाता है तो नि:सन्देह वह मनुष्य के लिए लाभदायक होने के कारण वरदान बन जाता है। गौर करने की बात यह है कि दोनों ही परिस्थितियों को उत्पन्न करनेवाले मनुष्य ही हैं।

संभाव्य के रचनाकारों की समस्त रचनाएँ आश्वस्त समाज की वाणी हैं जिसके मूल्य स्थिर हैं, परम्पराए दृढ़ हैं, शंकारहित विश्वास काफी मजबूत है। सारे भाव प्रसन्न शैली में व्यक्त तथा विम्ब निरंतरता से सजाये गये हैं। जाग्रत अनुभूतियाँ, सुगबुगाते भाव और अनुरूप शिल्प भाषा के धरातल पर शब्द की खोज है। इन रचनाकारों में कम-से-कम कहकर अधिक से अधिक ध्वनित करने की कला है।

संभाव्य आत्मा के सरोवर में किसी हल्की हिलकोर की अनुभूति की तरह है जो आपको असीम आनन्द से एकाकार होने की दिशा देता है।

वैचारिक लेख

शिक्षा का अधिकार

डॉ. दीपक शर्मा

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मो. : 98114242000

शिक्षा किसी भी समाज को सभ्य और उन्नत बनाने का नाम है। ऐसा माना जाता है कि जो राष्ट्र और समाज जितना अधिक शिक्षित होगा, वह उतना ही अधिक विकसित होता चला जाएगा। शिक्षा का उद्देश्य मात्र अधिकाधिक पैसा कमाना नहीं है जो आज मान लिया गया है। दरअसल ईश्वर-प्रदत्त जीवन को सही सलीके से जीने की कला को विकसित करना ही शिक्षा है। विश्व में आज शिक्षा को लेकर एक अलग तरह का उत्साह देखने को मिलता है। संसार भर में नए-नए परिवर्तन के साथ-साथ अनेक तरह के विचारोत्तेजक आलेखों एवं प्रतिवेदनों को समय समय पर देखा जा सकता है जिसमें हर देश अपने नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण एवं मूल्यों से संपन्न शिक्षा प्रदान करने की हर भरकस कोशिश करते हुए दिखाई देता है। इस क्रम में भारत ने भी आज से कुछ वर्षों पूर्व 1 अप्रैल, 2010 को 'शिक्षा का अधिकार' कानून पारित करके इस तरफ अपना एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम उठाया है जिसके अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को नि:शुल्क, अनिवार्य और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का वायदा भारत सरकार ने अपने देशवासियों से किया। उल्लेखनीय है कि हर देश में प्राथमिक शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है जो किसी राष्ट्र-विशेष के भावी नागरिकों के लिए किसी उपजाऊ भूमि से कमतर नहीं होती। भारत में शिक्षा का अधिकार नामक अधिनियम एक ऐसी पहल थी जिसके चलते अब भारत के लगभग उन एक करोड़ बच्चों को पढ़ने का अवसर मिलना था जो अभी तक स्कूल के बाहर बाजारों में खाने पीने का समान बेचते या फिर किसी मोटर मैकेनिक के सहायक होते थे।

शिक्षा के अधिकार कानून के विभिन्न प्रभावों तथा इसकी अभी तक की सफलता-असफलता पर चर्चा करने से पूर्व हमें इस कानून के मूलभूत सिद्धांतों को जान लेना बहुत जरूरी है जिससे सही परिप्रेक्ष्य में इस कानून का तार्किक अध्ययन संभव हो सकेगा। सबसे पहले तो यह बताना होगा कि भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात 1950 में ही भारतीय संविधान में यह प्रावधान किया गया था कि देश का हर वह बच्चा जिसकी उम्र 14 या उससे कम है, उसे नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी। इस प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत राज्य के निति-निर्देशक सिद्धांतों में स्थान दिया गया जिसे बाद में भुला दिया गया। बरसों बाद फिर से इसकी याद आई और 12 दिसम्बर 2002 में संविधान का छियासिवाँ संशोधन करते हुए शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया। इसके बाद अनेक उठापटक के उपरान्त सन् 2009 में इन कानून का सम्पूर्ण प्रारूप तैयार करके इसे अप्रैल 2010 में देश भर में (कश्मीर को छोड़कर) लागू कर दिया गया। जिसके कुछ महत्वपूर्ण पहलु इस प्रकार से हैं जिसे हम इस अधिनियम की आत्मा भी कह सकते हैं

6 से 14 साल तक के हर बच्चे को मुफ्त अनविार्य एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जायेगी। विकलांग बच्चों के लिए यह

उम्र 14 की जगह 18 वर्ष होगी।

ऐसा कोई स्कूल जो बच्चे की पहुँच में और उसके निकटतम हो, वह स्कूल उस बच्चे का दाखिला लेने से मना नहीं कर सकता है।

राज्य का यह परम कर्तव्य है कि इस कानून के लागू होने के तीन वर्षो के भीतर प्रत्येक बच्चे के निकटवर्ती क्षेत्र में एक स्कूल की उपलब्धता को सुनिश्चित करे अन्यथा राज्य की यह जिम्मेदारी बनती है कि बच्चों को उनकी पहुँच से दूर वाले स्कूलों तक पहुँचाने के लिए नि:शुल्क यातायात की व्यवस्था करे या उनके लिए आवासीय स्कूलों की व्यवस्था करे, जब तक कि बच्चों को उनके निकटवर्ती क्षेत्र में स्कूल उपलब्ध न हो।

प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने से पहले किसी भी कारण से, किसी भी बच्चे को पढ़ने से रोका नहीं जा सकता और न ही निकाला जा सकता है। साथ ही वह किसी भी प्रकार की बोर्ड परीक्षाओं से दूर रहेगा।

यदि कोई ऐसा बच्चा जिसकी उम्र 14 वर्ष से अधिक होने के बावजूद उसे प्रारंभिक शिक्षा नहीं मिली है, ऐसे बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए कोई पैसा नहीं लिया जाएगा।

ऐसा कोई बच्चा जो 6 वर्ष से अधिक का हो चुका है और स्कूल में काफी देर बाद दाखिले के लिए पहुंचा है, तो उसे उसकी उम्र के हिसाब से उचित कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा।

शिक्षा की गुणवत्ता में आवश्यक सुधार हों और स्कूल का बुनियादी ढाँचा तीन वर्षो के भीतर सुधारा जाए, नहीं तो उसकी मान्यता रद्द कर दी जायेगी।

सभी विद्यालयों में मूलभूल जरूरतें मसलन-पेयजल, लड़के-लड़कियों के लिए अलग शौचालय, खेल का मैदान, दोपहर का भोजन, पुस्तकालय, बच्चों के पढ़ने के लिए समुचित कमरों की उपलब्धता इत्यादि होना अनिवार्य है।

इस कानून का वित्तीय भार राज्य एवं केन्द्रीय सरकारें मिलकर वहन करेंगी जिसमें अधिकतम 55 प्रतिशत की भागीदारी केन्द्रीय सरकार की होगी।

इस कानून के अंतर्गत पढ़ने वाले सभी बच्चों को पुस्तकें, पेन-पेन्सिल, कॉपी, स्कूल-वर्दी, इत्यादि नि:शुल्क प्रदान की जाऐंगी।

इस कानून के अंतर्गत सभी प्रकार के सरकारी, अर्ध सरकारी और गैर-सरकारी स्कूल आएंगे।

आर्थिक रूप से पिछड़े हुए समुदायों एवं उनके परिवार के बच्चों के प्रवेश हेतु सभी निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत का अनिवार्य आरक्षण है, जिसकी मनाही कोई भी निजी स्कूल नहीं कर सकता। जिस पर प्रवेश लेने वाले बच्चों से

कोई पैसा नहीं लिया जाएगा। अगर कोई स्कूल ऐसा करता है तो उसकी मान्यता रद्द कर दी जायेगी।

कोई भी विद्यालय दाखिले के लिए किसी भी प्रकार से कैंपिटेशन फीस या डोनेशन के नाम पर रूपए-पैसे नहीं ले सकता है। अगर इस मामले में कोई विद्यालय दोषी पाया जाता है तो उस पर 25000 से लेकर 50000 रूपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।

पहली से पांचवी कक्षा के सभी विद्यालयों में छात्र और शिक्षका का अनुपात 1:30 (तीस बच्चों पर एक शिक्षक) होना चाहिए। यदि बच्चें की संख्या 200 से ऊपर हो जाती है तो यह अनुपात 1:35 हो जाएगा जो किसी भी हालत में 40 से ऊपर नहीं जाएगा। छठी से आठवीं कक्षा तक छात्र और शिक्षक का अनुपात 1:35 रहेगा।

केवल शिक्षित और प्रशिक्षित लोगों को ही शिक्षण का मौका मिलेगा।

उपर्युक्त सभी बातें इस शिक्षा के अधिकार कानून का सार कही जा सकती है जो इस कानून के लगभग हर पक्ष को हमारे सामने रखने में समर्थ है, फिर भले ही वो इसका वित्तीय पक्ष हो या सामाजिक पक्ष। हमें यह भी ज्ञात है कि जिस शिक्षा के अधिकार की बात बड़े ही जोरों-शोरों से सम्पूर्ण देश में की जा रही थी और आज भी लगातार की जा रही है उसकी जमीनी हकीकत कुछ और ही है। यह सच है कि शिक्षा के अधिकार कानून के लागू होने के बाद पूरे भारत के विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश लेने की दर में बहुत अधिक इजाफा हुआ है जो बढ़कर लगभग 96 प्रतिशत जा पहुंचा है। लेकिन साथ ही विद्यालयों में कक्षा दसवीं के बाद विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत भी लगभग 46 तक जा पहुंचा है। 'असर' (ASER - The Annual Status of Education Report) नामक एक प्रसिद्ध संस्थान, जिसने अभी 2012 के सितम्बर से लेकर नवम्बर माह में देश भर के गाँवों में जाकर कुछ आंकड़ो को एकत्रित करने की कोशिश की है जो इस शिक्षा के अधिकार नामक कानून को समझने में हमारी बहुत मदद करते है। 'असर' ने देश के 567 जिले के 16166 गाँवों में जाकर 331881 धरों के 596846 बच्चों पर अपना सर्वेक्षण केंद्रित करते हुए अपना कार्य किया। यह रिपोर्ट भी यही सिद्ध करती है कि भले ही देश में बच्चों के दाखिले का प्रतिशत बढ़कर 96 प्रतिशत हो चुका है लेकिन बच्चे कक्षा आठवीं और दसवीं के बाद बहुत तेजी से विद्यालयों से वापिस घरों या अन्य कामों में व्यस्त हो रहे है। मिडिल स्कूल के बाद बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने की दर लगभग 62 प्रतिशत तक जा पहुंची है।

यह तो थी इस कानून के लागू होने और उसके द्वारा उत्पन्न विभिन्न परिणामों की बात मगर अब करनी होगी इस कानून के कुछ मूलभूत सिद्धांतों की जिसकी अभी हमने ऊपर चर्चा की है। सबसे पहले तो हम इस अधिनियम के उस बिंदु पर चर्चा करेंगे जिसमें यह कहता है कि बच्चे को किसी भी सूरत में नजदीकी विद्यालय में दाखिल मिलना चाहिए। अगर नजदीक में कोई विद्यालय न हो तो राज्य उन बच्चों के स्कूल आने जाने का प्रबंध करेगा अन्यथा परिवहन का खर्चा उठाएगा। इसके समाधान के लिए राज्यों ने विद्यालय जाने वाले बच्चों के बस या रेल किराये में रिआयत दी है। साथ ही कई राज्यों ने तो राजकीय बसों में बच्चों को मुफ्त आवागमन की सुविधा भी दी है। अगर इस बिंदु पर युनाइटेड

किंगडम (UK) से भारत की तुलना की जाए तो बताना होगा कि यूके में स्कूल के लिए मुफ्त परिवहन देने की आयु 8 से 16 वर्ष रखी है जिसका सही रूप में अनुपालन भी हो रहा है। यूके में अगर बच्चा 8 साल से कम उम्र का हो और उसका स्कूल 2 मील से अधिक दूरी पर स्थित हो तथा बच्चा यदि 8 वर्ष से अधिक और 16 वर्ष से कम एवं स्कूल 3 मील से अधिक दूरी पर हो तो ऐसे बच्चों को यूके सरकार पूर्णत: मुफ्त परिवहन देती है। जबकि इसके विपरीत हमारे यहाँ तो स्थिति यह है कि अकेले कर्नाटक राज्य में ही लगभग तीन हजार स्कूल इसलिए बंद हो गए क्योंकि बच्चों ने उन स्कूलों में आना ही छोड़ दिया जिसका एक प्रमुख कारण सरकार द्वारा दूर दराज के बच्चों के लिए परिवहन की सुविधा उपलब्ध न कर पाना था। इस समस्या को दूर करने के लिए अब कर्नाटक सरकार प्रत्येक स्कूल जाने वाले बच्चे को 250 रूपए यातायात के लिए देने की योजना बना रही है। जबकि हमारे इस शिक्षा के अधिकार कानून में साफ लिखा है कि 3 किलोमीटर से ज्यादा की दूरी पर स्थित स्कूलों में आने वाले बच्चों के लिए राज्य सरकार उचित व्यवस्था करेगी। इसके विपरीत अभी तक किसी भी राज्य में इस नियम का कड़ाई से पालन होता नहीं दिख रहा है और बच्चे या तो दूर-दराजों के स्कूलों में जाने के लिए विवश है या फिर स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर। कमोवेश भारत में यही हाल लगभग हर राज्य का है जिस तरफ अभी तक कोई ठोस कदम उठाने की कोशिश नहीं की गयी है जिसका जवाब राज्य अधिकतर ध न राशि की कमी का बहाना बनाते हुए देते है, साथ ही केन्द्र सरकार पर दोषारोपण किया जाता है। इसके उलट केन्द्र सरकार दोष राज्य सरकारों पर लगाती है और इस बीच भुगतना बच्चों को पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि आज विश्वभर में भारत सर्वाधिक तेजी से विकसित होने वाले देशों में शुमार किया जाता है लेकिन इतना होने पर भी भारत आज अशिक्षा के स्तर पर विश्व में तीसरे पायदान पर स्थित है। ग्लोबल एजुकेशन रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से विकास करने वाले लगभग 127 देशों में से भारत का स्थान 100 देशों में भी न आकर 106 नंबर पर है। अगर इसकी तुलना भारत के पड़ोसी देश चीन से की जाए जिसका स्थान इस श्रेणी में 11 नंबर है, उससे भारत बहुत पीछे है। इस रिपोर्ट के यह तथ्य भारत में शिक्षा और शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न नीतियां एवं कानूनों के क्रियान्वय का सच सबके सम्मुख रखने के लिए काफी है। इसी क्रम में 'शिक्षा का अधिकार' कानून का भी अध्ययन किया जा सकता है जिसके प्रभावी होने के बाद से स्कूलों में बच्चों का पंजीकरण तो लगातार बढ़ रहा है, मगर साथ ही जिस गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का समर्थन यह कानून करता है वह समर्थन केवल दिखावा ही बनकर रह गया है। गौरतलब है कि इस समय लगभग 23 करोड़ बच्चे स्कूलों में तथाकथित शिक्षा प्राप्त कर रहे है। यह संख्या इतनी विशाल है जिसे हमारी सरकार उच्च शिक्षा तक पहुँचाने में समक्ष नहीं दिखाई देती है। साथ ही हम देखते हैं कि भारत के अधिकतर गांवों में शिक्षा की बहुत ही बदहाल स्थिति लगाते हुए इस 25 प्रतिशत वाले आरक्षण को कड़ाई से लागू करने का आदेश दिया है मगर देखना यह है कि इस स्कूलों के मालिक अब कौन से चोर दरवाजों का निर्माण करते हैं जिससे उनके द्वारा किया जा रहा शिक्षा का धंधा फलता फूलता रहे। एक अनुमान के मुताबिक देशभर में 6 से 14

वर्ष तक के बच्चों की संख्या लगभग बीस करोड़ हैं जिसमें से निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या चार करोड़ के लगभग है, तो ऐसे में इस बचे हुए सोलह करोड़ का पच्चीस प्रतिशत (लगभग चार करोड़) को ही लिखित रूप में यह सुविधा मिल पायेगी। लेकिन प्रश्न यह है कि यह बच्चे उन कुलीन वर्ग के बच्चों का सामना कैसे करेंगे? अगर वह आठवीं कक्षा तक जैसे-तैसे पढ़ भी लिए तो उसके बाद क्या? अभी भी यह एक बहुत बड़ा कड़वा सच है कि स्कूलों से बच्चों का सर्वाधिक ड्रॉप आऊट कक्षा नवीं से ही शुरू होता है जो बाहरवीं तक पहुँचते हुए अपनी चरम सीमा पर होता है। यद्यपि अभी हाल ही में दिल्ली के शिक्षा निदेशालय ने एक नोटिफिकेशन जारी करते हुए यह स्पष्ट किया है कि अब जल्दी में ही सरकारी स्कूलों की तरह निजी विद्यालय भी दोनों पालियों (सुबह और दोपहर) में चलेंगे। दोनों ही पालियों के शिक्षक एवं प्रिंसिपल के साथ-साथ अन्य स्टाफ भी सुबह की पाली से अलग होंगे। इस नोटिफिकेशन में इस बात का भी जिक्र है कि जिनी स्कूलों में जल्दी ही शुरू होने वाली यह दोपहर की पाली में बच्चों का प्रवेश पूर्णतः नेबरहुड-स्कूल (पोड़स के स्कूल) के आधार पर होगा। अब देखना है कि शिक्षा विभाग द्वारा की जाने वाली यह पहल कितनी कारगर सिद्ध होती है और इसे लागू करने के लिए जो अवरोधक हैं उनसे कैसे पार पाया जाएगा। अगर यह फोर्मुला दिल्ली में सफल हो जाता है तो पूरे देश में इसकी तर्ज पर काम किया जाएगा और देश में स्कूलों की अनुपलब्धता एवं उसे जल्दी उपलब्ध कराने की प्रक्रिया थोड़ी सरल हो जायेगी। हमें यह बहुत अच्छी तरह से पता है कि हमारे देश में शिक्षा के स्तर पर बहुत अधिक असमानता है जिसके चलते देश के बच्चों की स्थिति बहुत ही चिंताजनक है। शिक्षा की यह असमानता न केवल सामाजिक विभाजन के प्रसार को अवसर देती है बल्कि देश के विकास में भी सबसे बड़ा अवरोधक बन गयी है जिसे दूर करने के लिए यह शिक्षा का अधिकार नामक अधिनियम लाया गया है जो देश में न केवल शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास करता है, वरन सभी स्कूलों में कुछ बेसिक मानकों को लागु करके शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण परिवर्तन की कोशिश भी करता है। जिस नेबरहुड-स्कूल की चर्चा हमने अभी ऊपर की थी उसके द्वारा स्कूली-शिक्षा में चल रहे भेदभाव एवं असमानता को दूर किया जा सकता है जिसमें यह प्रावधान है कि बच्चे के पड़ोस का स्कूल जो उसके निर्धारित क्षेत्र में आया है, स्कूल ऐसे किसी बच्चे का प्रवेश देने से मना नहीं कर सकता है।

शिक्षा का अधिकार-अधिनियम पर बात करते हुए हमें यह भी उल्लेख करना होगा कि योजना आयोग ने अपनी पंचवर्षीय योजना में स्कूली शिक्षा के लिए सार्वजनिक एवं निजी सहभागिता (PPP - Public & Private Participation) सिद्धांत को लागु करने की सिफारिश की है, जिसके अनुसार अब सार्वजनिक पैसे (Public Money) का प्रयोग सरकार द्वारा शिक्षा के निजी एवं व्यावसायिकरण के लिए किया जाएगा। ऐसा करने के पीछे मान्यता यह है कि इससे स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन होगा। अब स्थिति यह है कि अनेक राज्य की सरकारों ने तो अनेक सरकारी संस्थानों की तरह अब सरकारी स्कूलों को भी निजी हाथों में देने का फैसला कर लिया है। दक्षिण भारत के कई राज्य हैं जिन्होंने सरकारी स्कूलों को निजी कंपनियों को देने

के लिए कई टैंडर भी समाचार पत्रों में प्रकाशित कर दिए हैं। मज़ेदार बात तो यह है कि हमारे देश के माननीय योजना विभाग ने इस पी.पी.पी. को स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में लागु करने की जिन नीति-निर्धारकों को बुलाकर यह नीति बनाई, उन सभी में से कोई भी शिक्षाविद नहीं था। सभी के सभी बड़े-बड़े कॉरपोरेट घरानों से सम्बंधित थे जिनका बस एक ही उद्देश्य था कि उच्च शिक्षा के बाद अब कैसे भी स्कूली शिक्षा को कारोबार में बदला जाए। यद्यपि निजी स्कूलों ने पहली से ही यह कार्य कर दिया है मगर अब यह कार्य काफी विस्तार से किया जाना है जिससे इन उद्योगपतियों का मुनाफा बड़े सार्वजानिक एवं निजी सहभागिता की यह नीति न केवल स्कूली शिक्षा को बाज़ार में बेचने जैसा है। परिणामस्वरूप, गरीब को सदैव शिक्षा से दूर रखने की कोशिश की जाने वाली है। लेखक का भी यह मानना है कि किसी भी देश के दो आधारभूत क्षेत्रों - शिक्षा एवं सुरक्षा-विभाग को निजी हाथों में नहीं सौंपना चाहिए। कारण, सेना एवं अन्य रक्षा विभाग किसी देश को जहाँ बाहरी सुरक्षा देते हैं वहीं शिक्षा देश का आंतरिक रूप से सबल बनाती हुई अग्रसर होती है। जिस निजी क्षेत्र का लक्ष्य केवल मुनाफा अर्जित करना हो, हम उससे कैसे उम्मीद कर सकते है कि वह देश एवं नागरिक हित को प्राथमिकता देगा। निजी क्षेत्र को तो बस जैसे-तैसे, तोड़-मरोड़कर पैसा कमाना होता है। उसका इससे कोई मतलब नहीं है कि उसके द्वारा उपलब्ध करवाई जाने वाली सुविधाओं को देश के सभी लोग प्रयोग कर रहे हैं या नहीं, सब लाभान्वित हो रहे हैं या नहीं, अधिकाधिक मुनाफा अर्जित करना ही इस निजी क्षेत्रों का प्राथमिक लक्ष्य रहता है। सरकारी एवं निजी क्षेत्र की दृष्टि में सबसे बड़ा अंतर भी यह होता है कि सरकारी विभाग जहाँ 'सर्वहित' की बात करता है तो निजी विभाग विशेषहित को ध्यान में रखता है। जिस जनकल्याण की भावना की चर्चा हम अकसर गाहे-बगाहे करते हैं वह इस निजी विभाग में नदारद ही नजर आती है। अब प्रश्न यहाँ यह उठता है कि जो योजना आयोग पी.पी.पी. के द्वारा स्कूली शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने की नीति अपना रहा है क्या वही निजी विभाग देश के गरीब बच्चों को शिक्षा मुहैया करवा सकेगा। जिस देश में लगभग 15 करोड़ बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हों क्या उस देश में निजी विभाग उन गरीब बच्चों को नि:शुल्क या बहुत ही कम दामों पर शिक्षा उपलब्ध करवा सकेगा? अगर राजधानी दिल्ली की बात करें तो बताना होगा कि यहाँ पहले बिजली विभाग को टाटा एवं रिलायंस समूह को यह कहकर दिया गया था कि इससे बिजली की चोरी को रोका जाएगा जिससे भविष्य में बिजली के दामों में भी भारी कमी आयेगी। अब फिर से ऐसा ही कुछ कह कर जल विभाग को भी प्राइवेट किया जा रहा है। आज बिजली के दामों में हर साल दो से तीन बार यह कह कर वृद्धि की जाती है कि कंपनियों को घाटा हो रहा है, जबकि उनकी बैलेंस शीट्स कुछ और ही कहती हैं। आम आदमी परेशान है कि वह बिजली के बिलों को भरे या अपने बच्चों को पाले। अब अगर इस परिप्रेक्ष्य में स्कूली शिक्षा को देखा जाए तो यही कह सकते हैं कि भले ही शुरुआत में निजी क्षेत्र कुछ सुविधाएं प्रदान करे लेकिन इसकी क्या गारंटी है कि भविष्य में वह अपने मुनाफे को भुला देगी? संभव है कि आम जनता पर भविष्य में स्कूली शिक्षा का बोझ इतना कर दिया जाएगा कि एकबारगी वे सोचने पर मजबूर हो जाएंगे कि अपने बच्चों को स्कूल भेजा जाए या काम करने।

एक बात यह भी है कि अगर सब कार्य निजी क्षेत्र ही करेगा तो फिर तथाकथित सरकार नामक इस चीज की हमें आवश्यकता ही क्यों? जो सरकार अपने नागरिकों को मूलभूत सुविधाएं (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) देने में असमर्थ है उसे त्यागपत्र देकर अन्यों को मौका देना चाहिए बजाय निजी क्षेत्रों की तरफ मुंह ताकने के। सरकार के नीति-निर्धारकों की मानें तो देश के सर्वोच्च संस्थानों एवं पदों पर किसी पूंजीपति या उद्योगपति को होना चाहिए क्योंकि इनके हिसाब से इन पैसेवालों के पास सब चीजों का समाधान होता है तभी तो बात-बात पर इनकी तरफ हमारे देश की सरकारें भागती है। इस बात का अंदाजा हम इसी बात लगा सकते हैं कि योजना आयोग ने भी पी.पी.पी. को लागू करने वाली बैठकों में बड़े-बड़े उद्योगपतियों को ही बुलाया जिसमें स्कूल शिक्षा से सम्बंधित कोई भी विद्वान शामिल नहीं था। हमारे योजना-आयोग को लगता ही नहीं है कि इसमें किसी शिक्षाविद से भी सलाह-मशविरा कर लिया जाए। इसके पीछे हमारे योजना-आयोग के क्या उद्देश्य हो सकते हैं अब यह कहने की जरूरत नहीं है।

अंत में विराम लेते हुए कहना होगा कि हमारे देश में अभी तक लोगों को शिक्षा का सही अर्थ ही ज्ञात नहीं है। हमारे ऊपर अब बाजारवाद का प्रभाव बहुत हो चुका है जिसके चलते अब शिक्षा भी खरीद-फरोख्त की वस्तु बन गयी है। जैसे हम बाजार में किसी खाद्य पदार्थो एवं सोने चांदी के दामों की गिरावट और चढ़ाव को देख कर खरीदारी करते हैं, वैसा ही कुछ अब हम शिक्षा के साथ भी करने लगे हैं। हमने आलेख के प्रारंभ में भी कहा था कि शिक्षा का मतलब केवल पैसा कमाना ही नहीं होता। मनुष्य को आंतरिक रूप से समृद्ध करते हुए उसे अपने परिवेश के प्रति सचेत करना ही वास्तविक शिक्षा है। जो शिक्षित व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी एक सकारात्मक बदलाव लाती है। लेकिन आज हमारी शिक्षा हमें यह सिखाती है कि कैसे भी पैसा कमाइए और पैसा कमाने की मशीन बनकर रह जाइये। हम क्या खो रहे हैं इससे हमारा कोई ताल्लुक नहीं है, हमने किन चीजों को पीछे छोड़ा कोई मतलब नहीं, बस इतना पता है कि हमें बहुत पैसा कमाना है। जो जितना ज्यादा कमाता है वह उतना ही सफल इंसान कहलाता है। जब तक शिक्षा को लेकर यह सोच बनी रहेगी न स्कूली शिक्षा और न ही विश्वविद्यालयी शिक्षा का कुछ हो सकता है। शिक्षा का कार्य अब इस सोच को भी खत्म करना है जिससे शिक्षा पाने वाले और देने वालों को थोड़ा बदला जा सके। हमें पता है कि यह कार्य आज बहुत मुश्किल हो गया है लेकिन इसके लिए एक कोशिश तो करनी चाहिए। आखिर हमें शिक्षा चुनौतियों का सामना करना भी तो सिखाती है। अंत में कुछ पंक्तियों से बात को रोकता हूँ -

''चलोगे तो मंजिल मिल ही जायेगी
सोचोगे तो कदम एक ही बहुत दूर है''

कविता

चौड़ाई की कीमत

सरिता दास

रेखाएं ही तो हैं वे
जो खींच देती हैं
सफेद कागज पर
छोटे बड़े देशों के मानचित्र
नदी, पर्वत, सागर
सब जगह है इनकी पहुँच
ये हल कर देती हैं
गणित के टेढ़े मेढ़े सवाल
सुलझा देती हैं
अनसुलझे हुए प्रश्न
कभी आयात, कभी वर्ग
तो कभी त्रिकोण बनकर
इतनी कारगर
होकर भी ये रेखाएं
बड़ी असहाय है
क्योंकि इनके पास
सिर्फ लम्बाई है चौड़ाई महीन
काश की
रेखागणित की दुनिया में
गढ़ी जाती फिर से
रेखाओं की परिभाषा
जिनमें उन्हें भी मिलता
भरपूर चौड़ाई का हक
लेकिन रेखाएं भी अब
नहीं करेंगी इंतजार
क्योंकि उन्हें भी
पता है चौड़ाई की कीमत
इसीलिए मिलकर लड़ेंगी
रेखागणित के समाज में
अपनी चौड़ाई के लिए।

सार्थकता

डॉ. सुनील कुमार परीट
बेलगाम, कर्नाटक
मो. : 08867417505

मत रोक मुझे
मै नर्मल नदी हूँ
बहना ही मेरा धर्म है
सागर से मिलना ही सार्थकता है
पिंजरे में मत कर बंद मुझे
आजादी से रहती पंछी हूँ
मधुर गान ही मेरा धर्म है
सब मन को भाना ही सार्थकता है।
पवन पंखों से मत रोक मुझे
मैं निर्मल स्वच्छंद हवा हूँ
लहराना ही मेरा धर्म है
मस्त मन को झोंका देना ही सार्थकता है
हे मनुष्य! तुझे इस
नदी, हवा, पंछी ने रोका है
मनुष्य हो तो
मानवता धर्म निभाना ही सार्थकता है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन-मर्म को चित्रित करनेवाले कालजयी साहित्यकार : विष्णु प्रभाकर

डॉ. कलानाथ मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
ए. एन. कॉलेज, पटना, बिहार

कालजयी जीवनी 'आवारा मसीहा' के रचयिता एवं हिन्दी साहित्य के समस्त विधाओं को अपने विशिष्ट रचना-कर्म से समृद्धि प्रदान करने वाले यशस्वी रचनाकार विष्णु प्रभाकर जी सिद्धांतवादी व्यक्तित्व के धनी एवं मसिजीवी साहित्यकार थे। उनके साहित्य में भारतीय समाज और संस्कृति, विदग्धता और अस्मिता के साथ व्यंजित हुआ है। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में समान अधिकार से अपनी लेखनी चलाई और हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। उनके रचनाकर्म में ऐसी विशेषताएँ हैं जो रचनाकारों को सत् साहित्य के सृजन के लिए प्रेरित करती है। वे कहते थे कि 'एक साहित्यकार को सिर्फ यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे क्या लिखना है, बल्कि इस पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिए कि क्या नहीं लिखना है।'

प्रभाकर जी के व्यक्तित्व पर महात्मा गाँधी के दर्शन और सिद्धांतों का गहरा प्रभाव था। इसी कारण उनका आकर्षण तत्कालीन कांग्रेस की तरफ हुआ और स्वतंत्रता संग्राम के महासमर में उन्होंने अपनी लेखनी को भी एक उद्देश्य बना लिया, जो आजादी के लिए सतत् संघर्षरत रही। उनकी पहली कहानी 1931 में हिन्दी मिलाप में छपी। इसके साथ ही उनके लेखन का जो सिलसिला आरम्भ हुआ, वह आठ दशकों तक निरंतर चलता रहा। अपने दौर के लेखकों में वे प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय जैसे महारथियों के सहयात्री रहे, लेकिन रचना के क्षेत्र में उनकी एक पृथक पहचान रही। विष्णु प्रभाकर एक स्वतंत्र प्रवृत्ति के लेखक थे और उन्होंने राजनैतिक बेड़ियों को कभी अपने उपर हावी नहीं होने दिया। शायद यही कारण था कि लम्बे समय तक आकाशवाणी से जुड़े रहने के पश्चात् भी साहित्य पर राजनीति का दबाव को उन्होंने नहीं स्वीकारा और वहाँ से त्याग पत्र दे दिया तथा स्वतंत्र लेखन में रम गए।

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून सन् 1912 को मीरापुर, मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। लेकिन बाल्यकाल हरियाणा में गुजरा। उनकी शिक्षा-दीक्षा पंजाब में हुई। उन्होंने सन् 1929 में चंदूलाल एंग्लो-वैदिक हाई स्कूल, हिसार से मैट्रिक की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् परिवार की आर्थिक तंगी के कारण छोटी नौकरी करते हुए उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से ही बी.ए. भी किया। कथाकार विष्णु प्रभाकर पूर्व में 'प्रेमबंधु' और 'विष्णु' नाम से भी लेखन करते थे। बाद में 'प्रभाकर' जुड़ गया।

राजकुमार सेनी ने अपने एक लेख में कहा है कि प्रभाकर जी तीन साहित्यकारों से प्रभावित थे। उन्हें प्रेमचंद का यथार्थवाद, जैनेन्द्र का विमर्श और शरतचंद्र की घुमक्कड़ी ने काफी प्रभावित किया। इसीलिए उनकी कालजयी कृति 'आवारा मसीहा' शरतचंद्र की जीवनी के तौर पर ही नहीं, बल्कि शोधपरकता, प्रामाणिकता और प्रवाह के कारण उपन्यास का आनंद देती है। उनके व्यवहार और रचना पर गांधी जी

का भी व्यापक प्रभाव था। उनका नाटक 'सत्ता के आर-पार' एक पौराणिक कथा के माध्यम से शांति और अहिंसा का आधुनिक बोध पैदा करता है। वे ऐसे विरले हिंदी साहित्यकारों में थे, जिन्हें अन्य भाषाओं के साहित्य प्रेमी भी पूरा सम्मान देते थे।

विष्णु प्रभाकरजी हिसार में रहते हुए नाटक मंडली में भी काम किया था और बाद के दिनों में लेखन को ही अपनी जीविका बना लिया। 'हत्या के बाद' विष्णु प्रभाकर का पहला नाटक था। आजादी के बाद वे दिल्ली आ गये और तब से आजीवन वे दिल्ली में ही रहे। वे सितम्बर 1955 में आकाशवाणी में नाट्य निर्देशक के तौर पर नियुक्त हो गये। वहाँ उन्होंने 1957 तक काम किया। विष्णु प्रभाकर जी अत्यंत सहज, सरल व्यक्ति थे किन्तु उतने ही स्वाभिमानी भी थे। वर्ष 2005 में राष्ट्रपति भवन में उचित व्यवहार न होने के विरोध स्वरूप उन्होंने पद्म भूषण की उपाधि लौटाने की घोषणा की और इसके साथ ही वे एक बार पुनः सुर्खियों में आ गए। जीवन और यथार्थ के सभी रूपों को अपने सौंदर्य चेतना के साथ साहित्य में रचने को वो रचनाकर्म का मुख्य हिस्सा मानते थे। नाथूराम शर्मा प्रेम के कहने से वे शरत चन्द्र की जीवनी आवारा मसीहा लिखने के लिए प्रेरित हुए जिसके लिए वे शरत् को जानने के लिए लगभग सभी स्थानों का भ्रमण किया, सभी ज्ञान स्त्रोतों तक गए, बांग्ला भी सीखी और जब यह जीवनी छपी तो साहित्य में विष्णु जी की धूम मच गयी। शरत्चंद्र के जीवन चरित्र को विष्णु प्रभाकर ने इस पुस्तक में अत्यंत ही कलात्मक सौदर्य के साथ प्रस्तुत किया है। शरत् के जीवन से जुड़ी अनेक घटनाओं, पात्रों और मनोभावों के चित्रण में विष्णु प्रभाकर की सृजनशीलता और उनकी रचनाकार सुलभ कल्पनाशीलता सतत् सक्रिय रही है। शरत् के जीवन तथा चिंतन पर जिन घटनाओं और पात्रों का गहड़ा प्रभाव पड़ा है। उनका वर्णन आवारा मसीहा में अत्यंत संवेदनशीलता और जीवन्तता के साथ किया गया है। फलस्वरूप सम्पूर्ण जीवनी औपन्यासिक प्रभाव से संपृत्त है। उनकी कालजयी कृति 'आवारा मसीहा' शरतचंद्र की जीवनी के तौर पर ही नहीं, बल्कि शोधपरकता, प्रामाणिकता और लेखनशैली के कारण औपन्यासिक प्रभाव का सृजन करती है। आवारा मसीहा के रचना विधान और अनूठे शिल्प के कारण हिन्दी साहित्य में जीवनी लेखन को एक नया आयाम मिला। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण, बाल साहित्य सभी विधाओं में प्रचूर साहित्य लिखने के बावजूद आवारा मसीहा विष्णु प्रभाकर जी के पहचान का पर्याय बन गया। बाद में अर्द्धनारीश्वर पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबंध, एकांकी, यात्रा-वृत्तांत और कविता आदि प्रमुख विधाओं में लगभग सौ कृतियाँ हिंदी को दीं। उनकी 'आवारा मसीहा' सर्वाधिक चर्चित जीवनी है, जिस पर उन्हें 'पाब्लो नेरूदा सम्मान', सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार सदृश अनेक देशी-विदेशी पुरस्कार मिले। प्रसिद्ध नाटक 'सत्ता के आर-पार' पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' मिला तथा हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'शलाका सम्मान' भी। उन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'गांधी पुरस्कार' तथा राजभाषा विभाग, बिहार ने भी उनके रचना कर्म को सम्मान देते हुए 'डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान' से भी सम्मानित किया गया।

प्रभाकर जी का पहला कहानी संग्रह 'आदि और अंत' सन् 1945 में प्रकाशित हुआ था। क्रमशः 'रहमान का बेटा' (1947), 'जिंदगी के थपेड़े' (1952), 'संघर्ष के बाद' (1952), 'सफर के साथी' (1960), 'खंडित पूजा' (1960), 'सांचे और कला' (1952), 'धरती अब भी घूम रही है' (1970), 'मेरी लोकप्रिय कहानियां' (1982), 'एक और कुंती' (1985), 'मेरी प्रेम कहानियाँ' (1991), 'कर्फ्यू और आदमी' (1994), 'दस कहानियाँ' (1994), आदि कहानी संग्रह आए।

विषणु प्रभाकर का पहला उपन्यास 'ढलती रात' 1951 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद क्रमशः 'निशिकांत' (1955), 'तट के बंधन' (1955), 'स्वप्नमयी' (1956), 'दर्पण का व्यक्ति और परछाई' (1968), 'कोई तो' (1980), 'अर्धनारीश्वर' (1992), 'संकल्प' (1993) आदि उपन्यासों की रचना कर उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया।

मौलिक लेखन के अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर 60 से अधिक पुस्तकों का संपादन भी कर चुके है। विष्णु प्रभाकर जी आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रकाशन संबंधी मीडिया के विविध क्षेत्रों में पर्याप्त लोकप्रिय रहे। देश-विदेश की अनेक यात्राएँ करने वाले विष्णु जी जीवन पर्यत स्वतंत्र रचनाकार के रूप में साहित्य-साधनारत रहे। वे जीवन के प्रति समर्पित आस्थावान साहित्यकार थे।

विष्णु प्रभाकर ने 1939 में लघुकथा लेखन का आरम्भ किया था। उनकी पहली लघुकथा 'सार्थकता' शीर्षक से 'हंस' के जनवरी, 1939 के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसमें एक फूल की व्यथा बड़े मार्मिक ढंग से रेखांकित हुई है। प्रभाकर जी के लघुकथा संग्रह 'जीवन पराग' (1963), 'आपकी कृपा है' (1982) तथा 'कौन जीता कौन हारा' (1989) में प्रकाशित हुए है।.. उनकी सम्पूर्ण लघुकथाओं का एक संग्रह 'सम्पूर्ण लघुकथाएँ' शीर्षक से सन् 2009 में प्रकाशित हुआ है जिसमें उनकी कुल 101 लघुकथाएँ संकलित हैं। विष्णु प्रभाकर ने अपने पहले लघुकथा संग्रह 'जीवन पराग' की भूमिका में लिखा है कि यह बोधकथाओं का संग्रह है। 'फर्क' प्रभाकर जी की बहुचर्चित लघुकथा है। भारत और पाकिस्तान की सीमा पर खड़े होकर जब एक देश का व्यक्ति कूटनीति की बातें कर रहा होता है, एक दूसरे देशवासियों को संदेह की दृष्टि से देख रहा होता है, ऐसे में बकरियों का एक झुंड सीमा की परवाह किए बिना पाकिस्तान से हिन्दुस्तान चला जाता है। परन्तु एक देश का निवासी दूसरे देश की सीमाओं में इस सहजता से प्रवेश नहीं कर सकता। पशुओं के लिए कोई सीमा का फर्क नहीं होता परन्तु इन्सान के लिए देशगत सीमाओं का बंधन है। यह बात देखने में छोटी लगती है, परन्तु प्रभाव इसका बड़ा है। यही वह बिन्दु है, जहाँ आदमी स्वयं को जानवर से भी बद्तर जानवर पाता है। इस लघुकथा के माध्यम से अन्यंत सहज भाव से यह संदेश विष्णु जी ने दिया कि आदमी ही है जिसने मनुष्य-मनुष्य के बीच देश, जाति और नस्ल व रंग की दीवारें खड़ी की है, वरना जानवर तो यह फर्क करना नहीं जानते। मनुष्य पहले हिन्दू और मुसलमान बन जाता है बाद मे आदमी। 'पानी की जाति' लघुकथा भी विष्णु की श्रेष्ठ लघुकथाओं में से एक है। यह लघुकथा विभाजन के उन खौफनाक दिनों की याद दिलाती है जब पानी भी हिन्दू और मुसलमान हुआ करता था। लेकिन असल में हिन्दू और मुसलमान के भेद की दीवारें समाज की ही खड़ी की हुई हैं। वास्तव में विष्णु प्रभाकर की लघुकथाएँ उनके जीवन के अनुभवों में से निकल कर आई हैं। यह लघुकथाएँ समग्रतः उन जीवन मूल्यों को रेखांकित करती हैं जो विष्णु जी के द्वारा अर्जित अनुभवों का नतीजा हैं। चाहे हमारे वर्तमान के विद्रूपताओं की घटना हो अथवा देश के विभाजन का संताप हो या फिर साम्प्रदायिक सद्भाव की बात हो, विष्णु प्रभाकर जी की लेखनी सतत् सक्रिय रही है। यही सक्रियता उनकी विशिष्ट है।

वे अपनी रचनाओं और व्यवहार दोनों में जीवन के मर्म और गुत्थियों को बहुत ही सहज और सरल ढंग से खोलते थे। वे हिंदी साहित्य के लगभग सभी आंदोलनों के प्रत्यक्षदर्शी भी रहे। सभी आंदोलनों को उनकी रचनाओं ने बल भी प्रदान किया, लेकिन किसी आंदोलन भर के बनकर नहीं रहे थे।

उनकी एक कहानी आयी थी - 'धरती अब भी घूम रही है'। इस कहानी पर नामवर सिंह की टिप्पणी आयी थी कि

अब भाषा और शैली नई हो गई है और यह कहानी पुरानी लगती है। इसका जवाब देवीचंद्र अवस्थी ने दिया और कहा था कि पुरानी चीजें सभी खराब नहीं होती और नई सारी चीजें अच्छी नहीं होती। यह एक छोटी घटना थी, लेकिन विष्णु जी ने ऐसी आलोचनाओं का जबाव भी अपनी रचनाओं से ही दिया। वे आंदोलन को उद्देश्य की कसौटी पर कसते थे, न कि किसी राजनीतिक विचारधारा पर। प्रगतिशीलता के पक्ष में वे थे, साथ-साथ अपनी संस्कृति और राष्ट्रीयता उनके लिए अहम थी।

सुरेन्द्र शर्मा के नाट्य निर्देशन में रंग सप्तक द्वारा विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का प्रभावशाली नाट्य मंचन भी किया गया। उनकी कहानियों की जीवन्तता इसी से सिद्ध होती हैं। कहानियों की विषय-वस्तु, प्रस्तुति, कलाकारों के अभिनय और निर्देशकीय सूझबूझ से यह मंचन अविस्मरणीय हो गया।

हिंदी नाट्य साहित्य में विष्णु प्रभाकर जी का स्थान अद्वितीय हैं। इनकी एकांकी अधिकतर सामाजिक जन जीवन से जुड़े हुए हैं। पहला नाटक 'नवप्रभात' (1951) में प्रकाशित हुआ और फिर क्रमशः 'गांधार की भिक्षुणी' (1982), 'डॉक्टर' (1961), 'युगे-युगे क्रांति' (1969), 'टूटते परिवेश' (1974), 'कुहासा और किरण' (1975), 'टगर' (1977), 'बंदिनी' (1979), 'सत्ता के आर-पार' (1981), 'अब और नहीं' (1981), 'श्वेत कमल' (1984) और 'केरल के क्रांतिकारी' (1987) सहित 'विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक' भी प्रकाशित हो चुका है। एकांकी-लेखन की दृष्टि से भी विष्णुजी की लेखनी धनी रही। उनका पहला एकांकी संग्रह 'इंसान और अन्य एकांकी' 1947 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद क्रमशः 'क्या वह दोषी था' (1951) 'अशोक तथा अन्य एकांकी' (1956) 'प्रकाश और परछाईं' (1956) 'बारह एकांकी' (1958) 'दस बजे रात' (1959) 'ये रेखाएँ, ये दायरे' (1963) 'ऊँचा पर्वत', 'गहरा सागर' (1966) 'तीसरा आदमी' (1974) 'नए एकांकी' (1976) और 'स्वाधीनता संग्राम (छह रूपक) 1958 में प्रकाशित हुआ।

अपने एकांकी - नाटकों में लेखक ने विभिन्न जीवन चित्रों द्वारा मानव मन के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने अपने एकांकी - नाटकों में व्यक्ति और समाज की सम्बद्धता को दर्शाया हैं। व्यक्ति के जीवन की समस्या समाज से असम्बद्ध नहीं होता। व्यक्ति भी समाज का ही अंग होगा। इनके नाटकों की मूल वृत्ति मानवतावादी हैं।

'धरती अब भी धूम रही है' और 'कितने जेबकतरे' भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन के कारण आज पुन प्रासांगिक हो गई है। 'मिडिल स्कूल का हैडमास्टर' अत्यंत ही संवेदनशील कहानियाँ है। बच्चों को शारिरिक यातना के विरूद्ध यह एक सशक्त कहानी है। 'डायन' कहानी ग्रामीण स्तर पर फैले अंध विश्वासों के खिलाफ प्रभावी है। वही 'दूधवाले का बेटा' मानवीय संबंधों की जटिलता और भावनाओं के प्रस्तुत करता है।

उपर एक प्रसंग से यह स्पष्ट तो हो ही चुका है विष्णु जी लोकतांत्रिक संस्कृति के संवाहक थे। उनमें जरा भी दिखावा नहीं था। वह अपने उपर लगे आक्षेपों का कभी जवाब नहीं देते थे। विष्णुजी की दृष्टि मानवतावादी रही है। उनके चरित्र में कहीं भी दोहरापन नहीं था। उनके पास कृत्रिमता का अहसास नहीं होता था। उन्होंने गांधीवाद को अपने निजी जीवन में उतारा था। आज के अनेक लेखक घर बैठे अखबार पत्रिकाओं से प्रेरणा ले कर ही लिखते हैं, जबकि विष्णु जी जैसे प्रतिबद्ध साहित्यकारों ने कई यात्राएँ की व असंख्य लोगों से मिल कर अपनी मौलिक दृष्टि बनाई। कई दशकों तक सतत् और प्रभावी लेखन करने और चालीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित होने के बावजूद भी प्रभाकर अपने जीवन के अंतिम दिनों में सतत् लेखन में व्यस्त रहे उनका मानना था कि साहित्यकार का समाज के प्रति एक

उत्तरदायित्व है। यशवंत कोठारी जी को दिए एक साक्षात्कार में प्रभाकर जी ने कहा कि 'मैं साहित्यकार को तीसरी आंख मानता हूँ। व्यवस्था को ठीक ढंग से चलने को बाध्य करने का दायित्व साहित्यकार पर है। उसे इस बहुत बड़े दायित्व का भार वहन करना चाहिए।

विष्णु प्रभाकर ने बाल साहित्य का भी सृजन किया। बच्चों के लिए लिखी गई 'पहाड़ चढ़े गजनंदनलाल' में बारह चपल बाल-कहानियाँ शामिल हैं। इनमें 'पहाड़ चढ़े गजनंदनलाल' और 'दक्खन गए गजनंदनलाल' एकदम निराली हैं। प्रसिद्ध बाल साहित्य रचनाकार प्रकाश पनु ने विष्णु प्रभाकर जी की बाल रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा है कि 'प्रभाकर की बाल कथाओं को पढ़ते हुए कभी हँसी की फुरफुरी छूट निकलती है तो कभी भीतर कोई गहरा एहसास बस जाता है, जो हमें जिंदादिली से जीने की ताकत देता है। इन कहानियों का नायक गजनंदनलाल है ही ऐसा, जो शरीर से भरी-भरकम होते हुए भी तेज बुद्धि का और बड़ा हरफनमौला है। ये संग्रह की हर कहानी में कुछ ऐसा है जिसमें एक बड़े कथाकार की मंजी हुई लेखनी का स्पर्श मन को मुग्ध करता है।'

उन्होंने अपनी पत्नी के निधन पर एक संस्मरण लिखा था। तमाम प्रतिक्रियाएं आई थी। एक महिला ने उन्हें चिट्ठी में लिखा था, ऐसा कोई मेरे लिए लिखे तो मैं तो अभी मरने के लिए तैयार हूँ। तो ऐसे भावुक भी थे विष्णु जी। वह अपने लिखने के बारे में कहते थे, 'प्रत्येक मनुष्य दूसरे के प्रति उत्तरदायी है, यही सबसे बड़ा बंधन है और यह प्रेम का बंधन है।' साथ ही वह दिनकर को कोट करते हुए कहते थे संस्मरण, दयानंद पांडेय, हस्तक्षेप -

पर जब तक जियूं वीणा सुर में बोलती रहे।
वह मेरा ही नहीं, सब का दर्द खोलती रहे।

कालजयी जीवनी आवारा मसीहा के रचियता और हिन्दी साहित्य को अपने अभिनव लेखन कर्म से समृद्धि प्रदान करने वाले, यशस्वी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर 11 अप्रैल सन् 2009 को इस संसार से विदा ले लिए। हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी हिन्दी साहित्य को समृद्धि प्रदान कर 97 वर्ष की आयु में इस संसार से विदा हो गये हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में साहित्य प्रेमियों के दिलों में अपनी यादें छोड़ गये हैं। निश्छल स्वभाव वाले, साहित्य का यह साधक सदैव हिन्दी साहित्य जगत के गगनांगन में चमकता रहेगा। वे साहित्य को पूर्णतः समर्पित कालजयी साहित्यकार थे। शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहने के बावजूद उनकी सक्रियता सतत् बनी रही। विष्णु प्रभाकर ने अपनी वसीयत में अपने संपूर्ण अंगदान करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसीलिए उनका अंतिम संस्कार नहीं किया जा सका, बल्कि उनके पार्थिव शरीर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को सौंप दिया गया। विष्णुजी के ज्येष्ठ पुत्र अतुल प्रभाकर ने विष्णु प्रभाकर की स्मृति-रक्षा के लिए एक न्यास का गठन किया है। हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त हस्ताक्षर प्रभाकर जी का यह जन्मशती वर्ष है। इस महान साहित्य शिल्पी को इस संक्षिप्त लेख के माध्यम से भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित है। साहित्य जगत में प्रभाकर जी का योगदान अमर है। उन्हीं की इन पंक्तियों को याद करते हुए कि...

''मैंने बीते हुए युग की कथा लिखी थी वह सच नहीं हुई तुम आनेवाले क्षण की कहानी लिख रहे हो वह भी सच नहीं होगी, काल सबको ग्रस लेगा शेष रह जायेगा दंभ मेरा, तुम्हारा, उसका...।''

1. गजल

मुहब्बत पाटती है दो जहाँ की दूरियाँ

अभिनव अरुण,
वरिष्ठ उदघोषक, आकाशवाणी, वाराणसी
मो. : 09415678748

बदन खुशबू में लिपटा है मगर आँखों में पानी है
ये किसकी याद में खोयी हुई सी रात रानी हैं।

हया में पत्तियाँ पीली पड़ी शाख़ों से हैं लिपटी
सुबह की ताज़गी ने रात की लिक्खी कहानी है।

ये कांटे फूल सारे अपनी अपनी हद में हैं रहते
सजे संवरे हुए गुलशन पे किसकी हुक्मरानी है।

तेरी सोहबत में दिन मेरा खिला था गुलमुहर जैसा
तेरी यादों में डूबी रात मेरी जाफ़रानी है।

मैं एक नन्हा दीया आंधी में अक्सर तेज़ जलता हूँ
दुआ माँ की है या फिर कोई ताकत आसमानी है।

मुहब्बत पाटती है दो जहां की दूरियां खुसरो
करम इस पर खुदा का है ये एक जज़्बा रूहानी है।

फकीरों को नहीं होता है गम कुछ आने जाने का
वो यकसा रहते हैं उनकी अमीरी खानदानी है।

मैं खुद को आज़माने के लिए ही घर से निकला हूँ
मुझे मालूम है बाहर हवा बेहद तूफानी है।

किनारा तोड़कर नदियाँ उफनती हैं जवानी में
कभी सागर बताता है कि उसमें कितना पानी है?

धनक कहते हो तुम जिसको वो कुदरत का है एक तोहफा
धरा को आसमां ने प्रेम की भेजी निशानी है।

मुहब्बत एक खुशबू है रहेगी रहती दुनिया तक
यही कान्हा है राधा है यही मीरा दीवानी है।

तेरे हाथों के जैसा स्वाद सालन में नहीं रहता
वही है आग पानी माँ वही चौका चुहानी है।

2. गजल

मुफलिसी फाकाकशी बेचारगी के नाम पर
अब कहाँ संवेदना मिलती किसी के नाम पर।

खो गयी शहरों में आकर गाँव की निश्चिंतता
कर रहे कुर्बान क्या क्या हम खुशी के नाम पर

चार पैसों के लिए साँसें तलक गिरवी हुई
सब घुटन में जी रहे हैं जिन्दगी के नाम पर

भूलकर हम सूर, तुलसी और नानक के शबद
गा रहे फिल्मी तराने आरती के नाम पर

इश्क़ की रूहानियत बाजार में कुम्हला गयी
अस्मतें लुटने लगीं हैं आशिक़ी के नाम पर

जिस भरोसे के भरोसे बस चढ़ी थी निर्भया
वो निरा हैवान निकला आदमी के नाम पर

कामना की आग में जलता हुआ पाया गया
हम कि जिसको पूजते थे रोशनी के नाम पर

जौक मोमिन मीर गालिब की रवायत अब कहाँ नहीं
जाने क्या-क्या हो रहा है शाइरी के नाम पर

कहानी

नीलम

शतदल मंजरी
गुड़गाँव, हरियाणा
मो. : 8292090400

सूरज ने जब पहली बार नीलम को देखा तो उसे लगा था कि रूप और यौवन की अगर कोई परिभाषा है तो उसे नीलम कहते हैं, लेकिन नहीं... नीलम वह नहीं थी जो सूरज ने समझा था।

निढाल-सा सूरज दूसरे कमरे में खून के आँसू पीने पर विवश था। उमंगों भरी यह रात अब जैसे सांय-सांय करने लगी थी। क्या कुछ सोचा था उसने और पल-भर में क्या हो गया दुख के मंडराते इन्हीं बादलों के बीच उभरा वही सांवला-सलोना रूप, वही मासूम-सी हँसी...। सूरज के होठों से निकला एक नाम - शोभा।

उसके जी में आया कि माँ से जाकर कहे कि तुमने शोभा को सिर्फ इसलिए ठुकरा दिया था कि वह गरीब और सच्चाई की तपती धूप में खड़ी थी और आज एक अमीर बाप की बेटी झूठ और फरेब के सूर्ख जोड़े में लिपटी तुम्हारे खानदान की शर्मीली बहू बन बैठी है। अब तो तुम खुश हो न माँ

सूरज आज भी उसी दोराहे पर खड़ा था जहाँ उसने शोभा को छोड़ा था। यादों और सोचों के भंवर में डूबा वह कब नींद की आगोश में सिमट गया उसे मालूम न हो सका। अगली सुबह जब उसकी आँख खुली तो उसे लगा जैसे उसने कोई भयानक ख्वाब देखा हो। पर वह ख्वाब नहीं था बीती रात की एक-एक बात उसे याद आने लगी। उसने सोचा कि नीलम यहाँ रहे या चली जाये, वह उसे कभी माफ नहीं करेगा। अब नदी के दो किनारों-सा जीवन था नीलम और सूरज का। नीलम ने सूरज से कई बार माफी मांगी और कई बार उसे समझाना भी चाहा। जो कुछ भी हुआ वह सब जोर-जबर्दस्ती थी, उसकी मर्जी से नहीं, पर सूरज कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था।

शरीर पर जब चोट लगती है तब घाव होता है या खून बहता है, पर जब मन का शीशा टूटता है, तो कहीं कोई आवाज नहीं होती, न कोई घाव दिखता है, न ही खून रिसता है, लेकिन भीतर ही भीतर सब कुछ टूट जाता है।

''आदमी टूट जाता है नीलम, जब विश्वास टूट जाता है। तुम बेकसूर हो यह मैं मान सकता हूँ, लेकिन एक दरार जो अब मेरे और तुम्हारे बीच में है वह कभी मिट नहीं सकती।'' सूरज की बात आज भी याद है नीलम को। नीलम ने अपने प्यार और व्यवहार से उस घर में सबको जीत लिया था अगर कुछ नहीं जीत पायी थी तो वह था सूरज का मन। कभी-कभी उसके मन की ज्वालामुखी फट जाती और वह खूब रोती। फिर एक दिन सूरज की माँ को जब पता चला कि घर में एक बाल सूरज आने वाला है तो उसने अपनी खुबसूरत बहू

की हजारों बलायें लीं। ज्योंही सूरज को इस बात का पता चला तो वह गुस्से से पागल हो उठा। उसने सोचा कि बद्तमीजी और बेशर्मी की भी कोई हद होनी चाहिए।

वह तेज-तेज कदमों से बढ़ता हुआ माँ के कमरे की तरफ जा रहा था कि रास्ते में नीलम मिल गयी। उसे यूं गुस्से से भरा हुआ देखकर वह डर गयी। वह किसी मुज़रिम की तरह उसके सामने खड़ी थी। सूरज को यूं महसूस हुआ जैसे उसकी डरी-सहमी आँखें कह रही हों - मेरी लाज रख लो सूरज। मुझे इस बदनामी और बर्बादी से बचा लो। मैं तुम्हारा यह एहसान जिंदगी भर नहीं भूलूँगी।

सूरज कुछ देर तक चुपचाप खड़ा नीलम की तरफ देखता रहा। नीलम की मासूस आँखों में आँसूओं से भींगा न जाने कैसा दर्द था, कि सूरज के होठ खुल न सके और वह किसी हारे हुए इन्सान की तरह वापस आ गया। नीलम सोचती थी कि धीरे-धीरे बढ़ते समय के साथ सब कुछ ठीक हो जायेगा, लेकिन यह नीलम की भूल थी। वक्त बीतता चला गया और सूरज अपने-आप में सिमटता चला गया। नीलम जब कभी भी आगे बढ़कर सूरज का कोई काम करना चाहती तो सूरज उससे पहले ही नौकर को आवाज देकर उस काम के लिए कह देता।

शाम को जब सूरज ऑफिस से लौटता तो नीलम बाहर लॉन में उसका इंतजार करती हुई मिल जाती, लेकिन सूरज उसकी तरफ देखे बिना आगे बढ़ जाता। रात को जब नीलम उसके करीब होती तो सूरज मैगजीन के पन्नों में खोया रहता। लेकिन इतनी बेरूखी के बाद भी नीलम सूरज से बहुत प्यार करती थी, उसकी बहुत इज्जत करती थी, क्योंकि वह जानती थी कि सूरज की खामोशी के कारण ही वह इस घर में टिक सकती है। इस घर के लोगों का प्यार, मान-सम्मान जो कुछ भी नीलम को मिला, वह सब सूरज की खामोशी के कारण ही था। अगर सूरज की जगह कोई और होता तो शायद... ... और वह उसके आगे कुछ सोच न सकी।

समय का पंछी पंख-पसारे तेजी से उड़ता रहा। एक दिन सूरज को यूँ महसूस हुआ जैसे माँ ने सारे घर को सिर पर उठा रखा हो। वह ऊँची आवाज में सूरज को पुकार रही थी। सूरज को ड्राइंग रूप में बैठे देखकर वह उसके पास चली आई। ''सूरज बेटा ये मैं क्या सुन रही हूँ...''

'क्या हुआ माँ' - बोलकर सूरज फिर से मैगजीन देखने लगा। ''नीलम अपने मायके जा रही है'' माँ ने हैरान होते हुए कहा। सूरज ने कोई खास ध्यान नहीं दिया। ''अरे, मैं पूछती हूँ कि इस शहर में बड़े डॉक्टरों की कमी है क्या?'' ''उसकी जिद्द है तो जाने दो माँ।'' ''कुछ भी हो मैं उसे जाने नहीं दूँगी''-माँ ने कहा। पर नीलम को कोई रोक न सका। वह चली गई, शायद हमेशा के लिए... गूँगी और बहरी बनकर कब तक यूँ ही जिंदगी बिताती। शाम को जब सूरज ऑफिस से लौटा तो लॉन में पड़ी खाली चेयर नीलम के चले जाने की गवाही दे रही थी। एक पल वह उसी चेयर की तरफ देखता रहा। एक लंबी साँस ली, और आगे बढ़ गया। लेकिन यह सूना घर, सूनी दीवारें नीलम की कमी को जता रही थी तब अचानक रामू काका की आवाज ने उसे चौंका दिया - चाय लाऊँ सरकार?...

सूरज सोफे में धँस सा गया था और फिर उसकी नजर सामने की ओर उठी जहाँ नीलम की तस्वीर आज भी मुस्कुराकर उसका स्वागत कर रही थी। वह एकटक उस तस्वीर की तरफ देखता रहा। बीती रातों की यादें मानस पटल पर फिर से उभरने लगी। एक अजीबसी चुभन उसके सीने में महसूस हुई और उसके मुँह से निकला - मुझे यूँ

परेशान करके तुम्हें क्या मिला...

नीलम का इस घर से गये एक महीना से भी ज्यादा वक्त बीत गया था, लेकिन अभी तक उसकी कोई खबर नहीं आई थी। सूरज जानता था कि नीलम उसको कोई पत्र नहीं लिखेगी, लेकिन कम-से-कम मुझे ना सही तो माँ को ही दो शब्द लिख देती। कुछ ही दिनों बाद सूरज के नाम एक पत्र आया जिसे पढ़ कर उसका रोम-रोम सिहर उठा।

सूरज बेटा,

मैं नहीं जानता कि तुम्हारे और नीलम के बीच मनमुटाव किस बात पर है, लेकिन एक बाप होने के नाते यह कह सकता हूँ कि इस समय तुम्हें नीलम से इस तरह नाराज नहीं होना चाहिए। वह हॉस्पिटल में है, और उसकी हालत बहुत ही खराब है। हो सके तो कुछ दिनों के लिए चले आओ। वैसे कुछ कहा नहीं जा सकता कि तुम्हारे आने तक नीलम बचेगी या नहीं...

तुम्हारा पिता महेन्द्र

पत्र पढ़कर सूरज को ऐसा लगा जैसे उसके जिस्म में खून सूख गया हो। आज नीलम जिंदगी और मौत के बीच झूल रही थी। नीलम की आवाज उसके कानों में गूँज रही थी... मैं बेकसूर हूँ।'' सूरज का मन पसीज गया और उसने तय किया कि वह नीलम से मिलने जरूर जाएगा। सूरज जब नीलम के घर पहुँचा तो उसे पता चला कि नीलम तो कई दिनों से अस्पताल में है और उसकी कोख से जन्म लेने वाला बच्चा मर गया है। सूरज बिल्कुल टूट गया। हे भगवान, ये तूने क्या किया..... मैंने ऐसा तो नहीं चाहा था।

सूरज जब अस्पताल पहुँचा तो वहाँ उसकी मुलाकात डॉ. प्रीतम से हुई। सूरज उसके व्यक्तित्व से न जाने क्यों बहुत प्रभावित हुआ। इतनी कम उम्र में इतना तजुर्बा सूरज ने पहले कभी नहीं देखा था। सूरज ने जब उनसे कहा कि वह नीलम को देखने आया है तो वह भी उनके साथ उसे देखने चले आये।

नीलम मुर्छित-सी अपने बिस्तर पर पड़ी थी। उसकी आँखें बंद थी और चेहरा किसी मुर्झाये फूल की तरह.... जैसे डाली से अब गिरी, तब गिरी...

डॉ. प्रीतम ने नीलम से कहा - ''देखो नीलम कौन आया है।'' नीलम ने धीरे-धीरे आँखें खोल दी, लेकिन अपने सामने सूरज को देखकर अपना होश खो बैठी और फूट-फूट कर रोने लगी। शायद वह सूरज का सामना नहीं कर पा रही थी। सूरज से नीलम का यह दर्द देखा नहीं जा रहा था। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह नीलम से क्या कहे। ''आप जरा मेरे साथ आइये'' डॉ. प्रीतम ने सूरज से कहा।

डॉ. अपने सामने चेयर की तरफ सूरज को बैठने का इशारा करते हुए खुद अपनी चेयर की तरफ बढ़ गये। उन्होंने एक बार सूरज की तरफ देखा और फिर बड़ी आहिस्ता से कहा ''हमें अफसोस है कि हम आपके बच्चे को नहीं बचा सके, लेकिन नीलम को बचाना अब आपके हाथ में है।''

सूरज कुछ समझ न सका। डॉ. ने बताया कि शरीर से कम और जेहन से ज्यादा परेशान है इसका इलाज सिर्फ तुम्हीं कर सकते हो। सूरज को खामोश देखकर डॉ. प्रीतम ने अपनी बात जारी रखी - ''मैं तुम्हारी परेशानी समझ सकता हूँ सूरज और यह भी जानता हूँ कि वह बच्चा तुम्हारा नहीं था।''

डॉ. प्रीतम की बात सुनकर सूरज को ऐसा लगा जैसे उसके चारों तरफ धूल भरी भयानक आँधी चलने लगी हो,

और उसका दम घुटने सा लगा था। उसने परेशान होकर डॉ. प्रीतम की तरफ देखा और टूटी हुई आवाज में पूछा - ''आपसे यह किसने कहा ?''

जवाब मिला - ''खुद नीलम ने !''

''सूरज मैं तुम्हें कोई ज्ञान या उपदेश नहीं दे रहा। एक दोस्त होने के नाते सिर्फ इतना ही कहूँगा कि नीलम को उसके किये की सजा बहुत मिल चुकी है। उसे और सजा मत दो, वह मर जायेगी। मैं जानता हूँ कि उसने भूल की है, लेकिन हममें से ऐसा कौन है, जिसकी जिंदगी में कोई भूल न छिपी हो। नीलम जिंदगी और मौत के बीच झूल रही है। सिर्फ तुम ही उसे बचा सकते हो।'' ना जाने कैसा जादू था डॉ. प्रीतम की बातों में कि सूरज को लगा कि जैसे उसके जीवन में उठता हुआ तूफान थम गया हो। उसकी जिंदगी करवट बदल रही थी। उसकी ख्वाहिश फिर से जिंदा हो गई थी। सूरज के होंठ कुछ कहने के लिए काँप रहे थे पर कह नहीं पा रहे थे।

सूरज की चुप्पी में डॉ. प्रीतम को अपनी जीत नजर आयी। वह अपनी चेयर से उठकर उसके पास चले आये। उस वक्त सूरज की आँखों में आँसू थे। ''मैं बहुत शर्मिंदा हूँ डॉक्टर। मैं जिंदगी को बहुत गलत समझता था परंतु आपने तो आज उसकी परिभाषा ही बदल दी। मैं नीलम को अब कभी तकलीफ नहीं पहुँचाऊँगा।''

''मुझे तुमसे यही उम्मीद थी'' - डॉ. प्रीतम ने मुस्कराते हुए कहा। सूरज को देखते ही नीलम की आँखों में फिर से आँसू उमड़ आये। लेकिन इस बार सूरज ने आगे बढ़कर नीलम के बहते आँसूओं को पोंछ दिया।

नीलम सूरज की तरफ एकटक देख रही थी। उसे लगा आज ईश्वर ने भी उसे माफ कर दिया है। सूरज को नीलम के सिर पर हाथ फेरते हुए कुछ याद आ गया और बोला ''डॉ. प्रीतम को तुम पहले से जानती हो क्या ? नहीं तो फिर अपने बारे में सब कुछ तुमने उन्हें कैसे बता दिया'' नीलम ने बताया कि शोभा बहन के कहने पर उसने सब कहा है।

शोभा का नाम सुना तो बीती यादें फिर से हरी हो गईं। फिर भी अपनी यादों को दबाते हुए बोला - ''कौन शोभा?''

''डॉ. प्रीतम की पत्नी। तुम्हें कहाँ मिली?''

''बड़ा अजीब इत्तेफाक है.. आपका घर छोड़ने के बाद मैंने फैसला किया था कि आपको दुख देने कभी वापस नहीं आऊँगी। जिंदगी बेइमानी बन गई थी। एक दिन मैंने फैसला किया कि अपनी आत्मा को जिस्म से मुक्त कर दूँगी और फिर मेरे कदम मौत की घाटी की तरफ बढ़ गये।'' फिर कुछ रूककर बोली - ''लेकिन किस्मत को शायद, कुछ और ही मंजूर था। जिन सूनी घाटियों में दूर-दूर तक कहीं कोई दिखाई नहीं देता है, वहाँ एक लड़की ने मेरी इरादों को नाकामयाब कर दिया और जब मुझे होश आया तो मैं डॉ. प्रीतम के अस्पताल में थी।''

अचानक दोनों को किसी की आवाज ने चौंका दिया ''देखो नीलम मैं तुम्हारे लिए कितने अच्छे फूल लाई हूँ।'' सूरज ने मुड़कर देखा तो वह देखता ही रह गया। उसके सामने शोभा खड़ी थी।

शोभा भी एक पल खामोश-सी सूरज की तरफ देखती रही और फिर मुस्कुराते हुए बोली-''हैलो सूरज, कैसे हो?'' एक अजीब सा दर्द सूरज की आँखों में उमड़ आया लेकिन अपने दर्द को छिपाते हुए बोला - ''अच्छा हूँ।''

''तुम कैसी हो.....? ठीक हूँ।''

और मुस्कराते हुए नीलम की तरफ बढ़ गयी।

नीलम अब घर आ गयी थी। उसकी सेहत अब पहले से काफी अच्छी हो गयी थी। शोभा और डॉ. प्रीतम नीलम से मिलने एक-दो बार उसके घर भी आये।

सूरज अकेले में शोभा से कुछ कहना चाहता था, लेकिन उसे कभी मौका नहीं मिला। फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेंट के बाहर खड़े नीलम और सूरज उन दोनों का इंतजार कर रहे थे। सूरज ने देखा - शोभा और प्रीतम तेज-तेज कदमों से बढ़ते हुए उनकी तरफ आ रहे थे कि अचानक डॉ. प्रीतम को रास्ते में किसी ने रोक लिया और शोभा उनसे कुछ कहकर आगे बढ़ गयी। नीलम दीदी-दीदी कहकर उससे लिपट गयी और सूरज ने मुस्करा दिया। लेकिन कुछ सोच कर नीलम से बोला - नीलम सफर के लिए कुछ फल बगैरह ले लो। नीलम ने 'जी' कहा और अपना पर्स लेकर आगे बढ़ गयी। ''इस अनजान शहर में तुमसे मुलाकात हो जायेगी। मैंने कभी सोचा भी नहीं था शोभा''.... ''सब इत्तेफाक की बात होती है सूरज।''

''हाँ, सब इत्तेफाक की ही बात होती है। मैं तुम्हें चाहकर भी अपना नहीं सका। तुम चली गयी। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारी माँ ने मुझे सब कुछ बता दिया था। कितनी चाहत से मैंने तुम्हें बुलाया था और कितनी बेइज्जती का सामना करना पड़ा था।'' ''जाने दो सूरज, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है।'' शोभा ने अफसोस से कहा! फिर भी ना जाने क्यों ऐसा लगता है कि मैं तुम्हारा मुजरिम हूँ। मुझे माफ कर दो शोभा। इस बार शोभा ने सूरज के चेहरे पर अपनी नजरे टिका दी और फिर सोचकर बोली - दिल से माफी माँगी रहे हो सूरज. ...? हाँ, शोभा! दिल की गहराई से, तो एक वादा करो... तुम नीलम को उसकी हर खुशी दोगे। सूरज ने घबराकर शोभा की तरफ देखा। हाँ सूरज एक वक्त था, जब खुशियाँ मुझसे रूठ गयी थी। मैं बेकसूर थी, फिर भी मुझे ऐसा लगा कि सच्ची मुहब्बत, सच्ची खुशी मुझे कभी नहीं मिलेगी। लेकिन डॉ. प्रीतम ने मुझे वह सब-कुछ दिया है सूरज....।

आज मेरे जिस्म का हर हिस्सा डॉ. प्रीतम का एहसानमंद है। मैं चाहती हूँ कि नीलम भी तुम्हारी चाहत बनकर रहे। सूरज-शोभा की तरफ एकटक देखता रहा। बहुत कुछ कह गयी थी शोभा नीलम की खुशी के लिए।

सिग्नल डाऊन हो चुका था। सूरज ने डॉ. प्रीतम और शोभा दोनों की तरफ देखा और धीरे से बोला - मैं तुम्हारी बात मानूँगा शोभा। गाड़ी चलनेवाली थी। नीलम एक बार फिर शोभा से लिपट गई। सूरज से भी डॉ. प्रीतम ने हाथ मिलाया और ट्रेन पर चढ़ गया। फिर, वे दोनों तब तक हाथ हिलाते रहे जब तक दोनों नजरों से ओझल न हो गये। सूरज ने प्यार से नीलम की तरफ देखा तो उसने मुस्कराकर अपनी पलके झुका ली।

मैं औरत हूँ

डॉ. रंजना जायसवाल
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 09451814961

मैं औरत हूँ
मेरे पास नहीं हैं
दो चेहरे
दो मुंह
और दो जीवन
मैं जो हूँ.....हूँ
जो नहीं हूँ....नहीं हूँ....।

मुझे अफसोस नहीं कि
मैं सीता-सावित्री के सांचे में फिट नहीं
मुझे गर्व है कि मैं मनुष्य हूँ
सारी कमजोरियों और खूबियों के साथ,

मैं जिसे प्रेम करती हूँ
पकड़ सकती हूँ चौराहे पर उसका हाथ,
देह और आत्मा तो क्या
त्याग सकती हूँ त्रैलौक्य
अनचाहे के ऐश्वर्य से परहेज है मुझे,

मैं औरत हूँ
किसी भी जनम में तुम सा
अच्छा नहीं बनना चाहती
तुम वर्तमान नहीं जीत पाते
खंगालने लगते हो अतीत
प्रतिभा दबा नहीं पाते हो
चरित्र तक पहुँच जाते हो
चरित्र किसी की बपौती नहीं
ना ही अंग विशेष है...

जानती हूँ
तुम्हारे तरकश में बहुत सारे
जहरीले तीर हैं
और साथ है समाज का
मुझे पत्थर मरवा सकते हो
चिनवा सकते हो दीवार में
तब भी गर्व होगा मुझे
कि मैं सच्चाई हूँ
नकारा है तुम्हारी झूठी सत्ता को
मैं आज की औरत हूँ।

लेख

भारतीय बौद्धिक पुनर्जागरण में हिन्दी भाषा का योगदान

मौसम कुमार ठाकुर
गोड्डा (झारखण्ड)
मो. : 09934554150

मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों में लोक भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छत्रपति महाराज शिवाजी मुगल साम्राज्य की ताबूद में कील सिद्ध हुए। महाराज श्री की फौजी भाषा मराठी, गुजराती, राजस्थानी मिश्रित थी। इसकी लिपि नागरी थी। नागरी लिपि शास्त्र ज्ञान के लिए आवश्यक थी। यह नव सृजित भाषा दक्षिणी-पश्चिमी शैली की हिन्दी थी। 50 वर्षो के बाद गुरू गोविन्द सिंह जी की भाषा हिन्दी (ब्रज बोली) परक थी। इनकी सेना की शासकीय भाषा भी हिन्दी थी। काव्य की भाषा ब्रज थी। श्री गुरू जी की भाषा बद्रीनाथ-हिन्दुकुश (पश्चिमी सीमा), आसाम (पूर्वी सीमा) तक सैन्य अनुशासकीय भाषा थी। यह हिन्दी भाषा का शैशवकाल था। इस समय ब्रज भाषा में काव्य रचना अनवरत चल रहीं थी। गुरू गोविन्द सिंह जी के तुरन्त बाद सन् 1857 ई. का प्रथम स्वातंत्र संग्राम का गिकुल बैरकपुर में श्रीमंगल पाण्डेय ने अपनी बंदूक की गोलियाँ दाग कर फूँकी थी। अंग्रेज अफसरों की भाषा अंग्रेजी थी, परेड की भाषा अंग्रेजी थी, पत्राचार की भाषा अंग्रेजी थी परन्तु भारतीय सैनिकों के बीच आपसी विचार विनिमय की भाषा हिन्दी थी।

सन् 1857 के बाद भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन् को तब एक करारा झटका लगा जब प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। लार्डमेकाले ने भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी बना दिया। संस्कृत भाषा को मृत कहकर अनुसंधान परक बना दिया। एक पत्र वर्नाकुलर नव जन भाषा की पढ़ाई शुरू कर दी थी। कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, मद्रास में हिन्दी भाषा बांगला, मराठी, तमिल कह कर कोई पाठ्यक्रम नहीं था। संस्कृत भाषा की उपेक्षा, अनुशंधान, अंग्रेजी अनुवाद, जर्मन फ्रेंच अनुवाद के योग्य बनाये जाने की प्रतिक्रिया में पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने अंग्रेजी-बंगला के माध्यम से संस्कृत साहित्य, वेद, शास्त्र, उपनिषद्, दर्शन का व्यापक प्रचार किया। बंगला-हिन्दी लिपि में अंतर रहने पर भी एक तरह बोधगम्य थी। 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की, इस संगठन के विचार सम्प्रेषण की व्यापक भाषा हिन्दी, अंग्रेजी दोनों ही थी। सन् 1905 ई. में बंग-भंग (बिहार, बंगाल, उड़ीसा एवं आसाम) के विरूद्ध उठी विद्रोह की भाषा हिन्दी-बंगला मिश्रित थी। सन् 1908 ई. में शहीद खुदीराम बोस का मुज्जफरपुर कम्पनी बाग तक 14 वर्षो की उम्र में आना, भाग कर पूसा आ जाना, उनके विचार सम्प्रेषण की भाषा निश्चिय ही हिन्दी थी। स्वामी वीरजानन्द सरस्वती ने अपने सुयोग्य शिष्य स्वामी दयानन्द को हिन्दी (आर्य भाषा) में चारों वेदों, निरूक्त, निघंटू, ब्राह्मण, आरण्यक

वैदिक वाङ्.गमय का अनुवाद करने के आदेश दिये थे। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, ऋषि अरबिन्द आदि राष्ट्र जागरण के अग्रदूत भले ही अंग्रेजी भाषा में विदेशों में भारत का परिचयात्मक भाषण दिये हों, परन्तु भारत भ्रमण के समय सम्बोधन की भाषा हिन्दी ही थी। पूज्य स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था ''गर्व से कहो हम हिन्दू हैं''। गोलमेज सभा में महामना तिलक ने कहा था - ''स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है''। भगत सिंह चन्द्रशेखर आजाद, उधम सिंह, रामप्रसाद विस्मिल, अस्फाउल्ला की भाषा हिन्दी थी। सन् 1920 ई. और इसके बाद गाँधी जी के नेतृत्व वाली कांग्रेस के आम जनों की भाषा हिन्दी थी। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की आह्वान की भाषा हिन्दी थी तुम मुझे खून दो हम तुम्हें आजादी देंगे। आजाद हिन्द फौज की आनुशासकीय भाषा हिन्दी थी।

हिन्दी भाषा-साहित्य के पद्य-गद्य के इतिहास लिखने वाले आचार्यो ने 20वीं सदी को ध्रुव रेखा मानकर लिखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. राम कुमार वर्मा सबों ने 19वीं सदी की रचनाओं दयानन्द, विवेकानन्द, आर्य समाज, ब्रह्म समाज के हिन्दी के परिष्कृत गद्य शैली में लिखे साहित्य को धर्म का साहित्य कह कर इसका समुचित प्रचार-प्रसार नहीं किया। वेवरोज विन्टरनिज ने अपने इतिहास का प्रारंभ वेदों को प्रस्थान बिन्दु मानकर किया। परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक का 19वीं सदी के 'सितारे हिन्दी' जैसे इक्के-दुक्के महाषुरूषों को स्पर्श करके पुनीत होने में विश्वास रहा है।

कुछ हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने तो अपनी 'भारत के इतिहास' पोथी में 'वैदिक काल से सम्राट अशोक तक' तो लिखा किन्तु धर्म निरपेक्षता का उल्लंघन के भय से बंधे रहे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों हिन्दी गद्य में लिखित सुन्दरलाल का ''भारत में अंग्रेजी राज'' हिन्दी साहित्य का गौरव ग्रन्थ है। हल्दीघाटी - श्याम नारायण पाण्डेय, आर्यावर्त - मोहन लाल महतो ''वियोगी'' माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान की कवितायें, मैथली शरण गुप्त की 'भारत भारती' रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय रचनाएँ आज भी 70-80 दशक पर किये लोगों की जुवां पर थिरकती है तो नव जीवन की लहर दौड़ जाती है। गांधीवादी दर्शन और मार्क्सवादी दर्शनों के फलस्वरूप बौद्धिक, राजनीतिक जागरण तो हुआ है परन्तु गांधी के आन्दोलन के सामानांतर स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु शहीद भगत सिंह की विचार धारा को अग्रसर करने के पीछे 19वीं सदी की राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव अत्यधिक महत्त्व रखता है।

पुर्नजागरण की भाषा हिन्दी रही है। इसी भाषा के साहित्य ने भारतीय जीवन को अपने स्वर्णिम भूतकाल को परिचय कराया है। दयानन्द नहीं होते तो मैक्समूलर को अपने कथन 'वेद गडेरियो का गीत है' का मंत्रवत पाठ होता। हिन्दी भाषा ने भारत को अपने प्राचीन से परिचय कराया है। उपर्युक्त शीर्षक का अभीष्ट यही है।

समीक्षा

कवीन्द्र रवीन्द्र : डॉ. बहादुर मिश्र

दयानन्द जायसवाल
भागलपुर, बिहार
मो. : 9931240303

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में प्रगतिवादी समीक्षा आज भी सार्थक और जीवंत है। इसकी ही तलाश से नये समाज के निर्माण का सपना पूरा किया जा सकता है। समीक्षा सर्जनात्मक साहित्य का अंग है, इसलिए समीक्षक सहृदयी होकर रचनाकार की भावनाओं की यथार्थता के आस्वादन के व्यक्त करते हैं।

डॉ. बहादुर मिश्र अपनी सृजन संवेदना के कारण आलोचना-शैली सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही धरातलों पर मर्मस्पर्शी आवर्जना से अभिशिक्त हैं। इनके निबंधों में एक सधे शैलीकार का पहल और अभिव्यक्ति का कौशल देखते ही बनता है; शास्त्रीयता और साहित्यिक व्यापकता का दुर्लभ मेल। इन्होंने अपनी रचना में नैतिकता एवं मानवता की सार्थकता मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से प्रतिष्ठित किया है। आधुनिक युगबोध एवं परिवेश के संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। सामाजिक कलानुभूति और सामुहिक जाग्रत-चेतना का अभूतपूर्व आख्यान उपस्थित किया है। इन्होंने अपने विभिन्न प्रभाव स्त्रोतों में विभज्जित अध्ययन को गंभीर व्यापकता, आकर्षक वैशिष्ट्यता प्रदान की है।

अबतक की प्रकाशित कृतियों में 'कवीन्द्र रवीन्द्र' इनकी साहित्य साधना का श्रेष्ठांश है। यह मानव संवेदनाओं और रागात्मक वृत्तियों पर निर्भर एक विकासशील सिद्धान्त है, किसी तालाव का बंधा हुआ जल नहीं। इनकी रचनाओं में व्यष्टि और समष्टि, सौन्दर्य और उपयोगिता, शाश्वत और सापेक्ष का अन्तर नहीं है। नैतिक मूल्य भी अपने उदात्त रूप में जीवन के स्वस्थ नैतिक दृष्टिकोण का पोषण करता है। इनकी रचनाओं का मानव के अतीत, वर्तमान और भविष्य के साथ अभिन्न संबंध है।

जैसे-जैसे जीवन की गतिविधि बदलती जाती है, वैसे-वैसे मानववाद की प्रकल्पना में भी परिवर्तन होता जाता है। 'कवीन्द्र रवीन्द्र' रचना संपादन, साहित्य की विकासशील चेतना की प्रत्येक विधा को समाहित कर मानव-व्यक्तित्व के सर्वांग उत्कर्ष को प्रतिष्ठापित करना है। बंगला साहित्य का अभिष्ट स्वरूप हिन्दी साहित्य की परम्परा के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों पर प्रतिष्ठापित करने वाले रवीन्द्रनाथ अविस्मरणीय हैं। रचनाकार यहाँ नीति, राजनीति, धर्म और सभ्यता के अचेतन भाव से उपर उठकर, कला के भीतर सजाकर हमारे आगे इसे पेश करते हुए यह कहकर अपनी गठरी पटक देते है कि 'तूफान की आँखों में कोई सुशांत बिन्दु होता है। किन्तु वह बिन्दु उस तूफान की आँखों में भी होना चाहिए जो हमें वर्षों से हिला रहा है। मुस्किल यह है कि यह बिन्दु दार्शनिकों को दिखाई नहीं देता, इतिहासकारों को दिखाई नहीं देता उसका द्रष्टा केवल कवि ही हो सकता है। यह रचना इनकी सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से आकर्षक, प्रगतिगामी, सुरम्य और गहरी अभिव्यक्ति है। रवीन्द्रनाथ के

काव्यों को पढ़ने से लगता है कि कवि वही आदमी होता है जिसमें दर्द भोगने की योग्यता और शक्ति है। इनकी कविताएँ पढ़ते समय कौन यह अनुभव नहीं करता कि हम उसी महामानव की बेचैन आवाज सुन रहे हैं जो सभ्यता के ह्रास को देखकर सामाजिक दृष्टिबोध को जागृत कर सारी दुनिया को एक आयाम दिया है। कवि का मानना है बुद्धि प्रेम को मनोवैज्ञानिक विकास बताकर कमजोर करना चाहती है, भावना प्रेम को हमेशा की तरह आज भी उकसा रही है। बुद्धि अन्तर्राष्ट्रीयता चाहती है। किन्तु भावना राष्ट्रीयता की ओर है।

डॉ. बहादुर मिश्र रवीन्द्रनाथ के काव्यों का सार-संग्रह 'कवीन्द्र रीवन्द्र' में संग्रहित कर संस्कृति की सूक्षमता को, अस्तित्व की भावनाएँ को अदृश्य आवेगों से बचा लिया है। इन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि रचनाएँ इतनी मन मोहक या मादक नहीं होनी चाहिए कि हर आदमी उन्हें ही पढ़ना चाहे और हर आदमी उन्हें पढ़कर निष्क्रिय बन बैठे, संघर्ष विमुख हो जाय तथा समाज की पीड़ा को भूल जाय। साहित्य में सौन्दर्य तो केवल चाशनी है। उसकी लपेट में तो हमें समाज की रक्षा और विकास तथा संस्कृति विचारधारा की गोलियाँ खिलानी है। रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व से परिभाषित, कृतियों से संपादित यह पुस्तक केवल आनन्द का माध्यम नहीं, निष्फल चिन्तन में डूबे हुए मनुष्य को जीवन की सार्थकता समझने का मंत्र-संग्रह है।

भरत की संशिलष्ट सभ्यता-संस्कृति के प्रवर्त्तक गुरूदेव के जीवन-तल को तलाशते हुए विश्व-पटल पर छाये उनके महान व्यक्तित्व एवं कृतित्व की गाथा गाने वाले लगभग सतरह ऐसे महान रचनाकारों की रचनाओं से संग्रहित अपनी इस 'कवीन्द्र रवीन्द्र' को संपादित कर डॉ. बहादुर मिश्र साहित्य प्रेमी को एक अभूतपूर्व अनुभूति से अभिसिंचित कराये हैं, जो साहित्य के क्षेत्र में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के भावात्मक तत्त्वों को आत्मसात कर लिए। यह संपादन इनके जीवन की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, गतिविधियों और उसमें पले हुए व्यक्तित्वों का संवेदनात्मक प्रतिफल है। इनकी संपादकीय सृजनशीलता की प्रेरणात्मक दृष्टि बंगभाषायी समाज की सौन्दर्य प्रतीति है जो एक निज-चेतस् आलोक बनकर सामने आयी है।

'कवीन्द्र रवीन्द्र' के सम्पादन में ये जिन साहित्यकारों के विचारों को बिम्बित किये हैं, वे हैं - 'हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द्र, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पंत, महोदवी वर्मा, शिव मंगल सिंह 'सुमन' फणीश्वरनाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर, मनोहर वर्मा, नागार्जुन, गोपाल सिंह नेपाली, गजानन माघव, मुक्तिबोध, हरिवंशराय बच्चन, केदारनाथ अग्रवाल तथा रमेश नीलकमल।

इन साहित्यकारों ने रवीन्द्रनाथ को एक स्वर से मानवीयता, उदारता, उदात्तता और सार्वभौम संवेदनशीलता, विश्वबन्धुत्वता, साधन-सौन्दर्यता और समग्रता के अमूल्य निधि कहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा 'रीवन्द्र ने जो दिया है, अखिल मानव को दिया है। बरसते हुए धनश्याम की तरह, बहती हुई नदियों की तरह, प्रकाश बरसाते सूर्य की तरह, रस बिखेतरते चाँद की तरह, और प्राणवन्ती वायु की तरह रवीन्द्र का सृजन भी देवत्व का ऋण है।''

फनीश्वरनाथ रेणु ने कहा - ''गुरूदेव अपनी भाषा की सोने की छड़ी छुआ देते हैं - हेमन्ती आँखे खोलकर हेरती हैं। गुरुदेव के कण्ठ में प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र उद्दीप्त होता है, सुन्दरी चटुल नृत्य आरंभ कर दती है। गुरुदेव अपनी

वीणा के तारों को 'करांगुलि' स्पर्श करके झंकार देते हैं - सुन्दरी गीत गाने लगती है।

रामधारी सिंह दिनकर ने कहा - ''रवीन्द्रनाथ एक ऐसे समय में उत्पन्न हुए, जबकि भारतवर्ष को एक ऐसे व्याख्याता की आवश्यकता आन पड़ी थी जिसकी वाणी को केवल स्वदेश ही नहीं, विदेश भी समझे। रवीन्द्रनाथ किसी भी समय उत्पन्न होने पर भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा कर सकते थे, किन्तु जिस समय वे उत्पन्न हुए, वही उनका ठीक समय था। ऐसा लगता है, मानो विरंचि की पोथी में भारत वर्ष की भाग्योद्वार का जो लेखा पहले से ही लिखा हुआ था, उसके क्रम में, इस विशाल एवं गौरवशाली देश की आत्मा बहुत दिनों से रवीन्द्रनाथ की प्रतीक्षा कर रही थी।''

सुमित्रानन्दन पंत ने कहा - 'रवीन्द्र की प्रेरणा का सहस्त्रमुख स्त्रोत उनके गंभीर इस - समुद्र के समान अंतर में था, अपनी अनेक कविताओं में वह अपने अन्तरतम में स्थित देवता को श्रद्धांजलि अर्पित कर उसके सौन्दर्य माधुर्य के गीतकार अपने अक्षय संगीत में बिखेरते रहे हैं। उसी अन्तर के गवाक्ष से वह मानव-जीवन के सत्य का मुख निनिमेष भावबोध में देखते रहे और उसके आलोक से धरती के जीवन के सौन्दर्य को संवारते एवं उसका संस्कार करते रहे।''

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा - 'रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व इतना विशाल था कि उनकी शैली का या भावों का ठीक-ठीक अनुकरण करना संभव नहीं था। हमारे देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने उनकी शैली का अनुकरण करने का प्रयास किया, पर वे सफल नहीं हो सके। सफल वे हुए, जिनका अन्तरतर हिल्लोलित हुआ। जो अपने 'स्व'-धर्म को पहचानने में समर्थ हुए।''

महादेवी वर्मा ने कहा - 'कवीन्द्र में ऐसी क्षमता थी और उनकी इस सृजनशक्ति की प्रखर विद्युत को आस्था की सजलता संभालते रहती थी। यह बादल भरी बिजली जब धर्म की सीमा छू गई, तब हमारी दृष्टि के सामने फले रूढ़ियों के रन्ध्रहीन कुहरे में विराट मानव-धर्म की रेखा उद्‌भाषित हो उठी। जब वह साहित्य में स्पन्दित हुई, तब जीवन के मूल्यों की स्थापना के लिए, तत्त्व सत्यमय, सत्य शिवमय और शिव सौन्दर्यमय होकर मुखर हो उठा। जब चिन्तन को स्पर्श मिला, तब दर्शन की भिन्न रेखाएँ तरल होकर समीप आ गयीं।''

सम्पादक की प्रस्तुति को समीक्षात्मक दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं - रवीन्द्रनाथ अत्यन्त जागरूक कवि थे। संसार के कोने-कोने में कला जो नई करवटें ले रही थीं, उनका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। उनकी शैली रूढ़िग्रस्त समझी गई है। जैसे अज्ञान का प्रतीक अन्धकार और ज्ञान का प्रतीक प्रकाश आदि। रवीन्द्र साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य का अनुपम चित्रण उसका अपना दर्शन, भाव और कल्पना की जड़ों में मानक-संवेदना तथा रूप रस गन्ध आदि का बोध भी इन्हें हुआ है। अर्थ की सरलता, भाव की तरलता, ध्वनि की कोमलता, माधुरी, गेयता और स्वत: स्फूर्त भाव राशि आदि विशेषताओं को रवीन्द्र के काव्य में इन्होंने परखा और सराहा। दृश्य वर्णन की अद्‌भूत क्षमता, गीत कौशल उदात्त ध्वनि-प्रवाह, भाव-विचार-बिम्ब को भी पहचाना। रवीन्द्र की कविताओं को पहनाए गये अभूषण नहीं है, वे उनके आन्तरिक गठन के अभिन्न अंग हैं। इन्होंने रवीन्द्र के श्रृंगारिक चेतना, वर्णन-कौशल, छन्द-वैविध्य, शब्दों के सटीक चुनाव, एवं वाक्य विन्यास को आलोकित करते हुए कविताओं का भावानुवाद सूक्ष्म और मार्मिक रूप में प्रस्तुत कर उत्कृष्ट कोटि के सौन्दर्य-शिल्प में 'कवीन्द्र रवीन्द्र' की साहित्य साधनायात्रा पूरी की। उनके मनोहारी पुष्पों पर अपनी प्रतिभा की शबनम चुन-चुनकर बरसायी है।

गज़ल

गाँव की पगडंडियां

अशोक मिजाज़
सागर, मध्य प्रदेश

रोकतीं हैं रास्ता जब लाल पीली बत्तियाँ
याद आती हैं मुझे वो गावों की पगडंडियां

फिर वही बस्ते वही स्कूल बस का इंतिजार
ख़त्म होने जा रहीं हैं गर्मियों की छुट्टियाँ

आपका कोई फोन नंबर हो तो लिखवा दीजिए
वक़्त ले लेती हैं कितना आती जाती चिट्टियाँ

इस नगर के शोर में है किसको फ़ुर्सत जो सुने
मस्जिदों की वो अज़ाने मंदिरों की घंटियाँ

सैर करने के बहाने आओ गुलशन में चलें
कुछ वहाँ भंवरे मिलेंगे कुछ मिलेंगी तितलियाँ

आज छज्जे से जो देखा पहली बारिश का समा
हर सड़क पर दिख रही थीं छतरियाँ ही छतरियाँ

शायराना हो गया है आज मौसम का मिज़ाज
हाल दिल का कह रहीं हैं काग़ज़ों से उंगलियाँ।

गज़ल

इन आँखों में देखें...

बच्चू चौधरी 'अकेला'
भागलपुर

इन आँखों में देखें तो लहराता समन्दर है
गहराई है इतनी की बलखाता समन्दर है

खुद डूबे हैं इनमें हम तुम बचके निकल जाओ
सदियों से ये हमको जी बहलाता समन्दर है

साहिल पे जो रहते हैं अन्दाज़ा उन्हीं को है
तूफां को ये कब कैसे ले आता समन्दर है

रातों को अन्धेरे में गोते भी लगाते सब
मोती से है खाली सर खुजलाता समन्दर है

अश्के-दिल तो नजरों से दरिया सा बहा देते
बहते हैं जब आँसू तो इठलाता समन्दर है

जी लेते हैं घुट-घुट के पानी के पियासे सब
जब माँगे हैं पीने को कतराता समन्दर है

बादल को हर मौसम में जी भर के पिलाते हैं
इस घरती के सूखे पे मुस्कुराता समन्दर है

नदियों की हर धारा अपने में मिला लेते
हँस-हँस के औ इतराकर उफनाता समन्दर है।

लेख

यांत्रिक युग का साहित्य

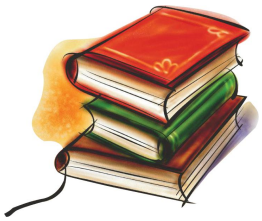

डॉ. ऋचा सिंहा
भागलपुर
मो. : 7631915203

साहित्य समाज का एक साफ-सुथरा दर्पण है, जिस पर धूल न जमने देना भी साहित्यकार का ही काम है। पाठक, श्रोता या अवगाहक के मन व हृदय की सुसंवेदनशीलता भी साहित्य को एक स्वच्छ दर्पण बनाकर रखती है एवं उसकी संवेदनहीनता भी इस स्वच्छ दर्पण की धूलि कहला सकती है। एक सफल साहित्यकार हर तरह के युग में अपने पाठक-श्रोतादि की सोई संवेदना को भी जगाने वाला होता है। उसकी रचना में समाज के यथार्थ स्वरूप की आदर्शोन्मुखी तस्वीर होती है, जैसा कि प्रेमचन्दादिक साहित्यकारों की रचनाओं में सहज-लभ्य है।

वर्त्तमान युग में 'संभाव्य' आदि साहित्यक पत्रिकाएँ भी इसी दिशा में एक सफल प्रयास की सशक्त मिसालें हैं।

यंत्रिकयुग में 'यंत्र' मानवता का साधन बना रहे, न कि उसका साध्य बन जाए, साहित्यकारों की यह नैतिक जिम्मेवारी भी है। ऐसे युग में यंत्र विध्वंस या दानवता को पोषित करे, तो यह समाज की वह धूल है, जिसे हटाते रहना भी साहित्यकार का दायित्व है। हर युग में (यकीनन, आज के यांत्रिक युग में भी) साहित्यकार की नजर समाज के हर कचरे (बाह्य और व्यवहारात्मक), हर कौरूप्य (कुरूपता) निर्दयता ही सबसे बड़ी कुरूपता कही गई है - उसकी हर कुरीति पर हो, जो जिन्दगी को मौत का पर्याय बनाती सी, कुप्रतिवद्ध दिखती है।

यांत्रिकयुग के साहित्यकार को व्यक्तित्व और उसकी कृति भी उपर्युक्त समस्त कलुषितताओं कुत्सितताओं एवं बीभत्सताओं की काट होनी चाहिए।

आज पूरी दुनिया यंत्रों की जिस गुलामी के दौर से गुजर रही है, उस पासे को पलटने की ताकत एक साहित्यकार में होती है। साहित्यकार के अन्दर यंत्रों के बेलगाम घोड़े को काबू करने का दम होता है। यंत्रों की खूबी अगर अतिपरकतावश खामी का रूप अख्तियार कर ले, तो उस खामी को भी खूबी बनाकर जीने की राह निकलता है वह जीना समग्र मानवता का।

यंत्र है क्या? यंत्र मनुष्य के उस तीव्र / हवा से द्रुत गति वाले मन के प्रतिरूप और प्रतिफल हैं, जिसे यह पता होता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस तीव्रगामी 'विधायक' मन ने ही कम्प्यूटर जैसे द्रुतगति सहायक को जन्म दिया है। इस मन की विधायी रफ्तार (Constructive Speed) ने ही तीव्रधावी रेलों, वायुवेगी यानों का निर्माण किया बगरैह-बगरैह और दूरियाँ सिमंट गई, ब्रह्माण्ड एक हो गया।

सक्षम आत्मनिष्ठ मन मानवता की सेवा के लिए अनेक निपुणतारक्षक आविष्यकार करते हैं और अक्षम-आत्म-अनिष्ठ मन उसी आविष्कार को मानवता से स्वयं कुसेवा लेने अथवा उसे ध्वस्त करने के लिए दुरूपयुक्त कर 'भक्षक' बन जाते हैं, जिस प्रकार अंगरक्षक बन जाते हैं अंगभक्षक या फिर यंत्र बन जाते हैं मारक मंत्र या तंत्र।

साहित्यकार की सजग दृष्टि इनसब पर होती है। वह यथार्थ को पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देख रहा होता है, पर एक निर्मात्री, संरक्षिका, विधायिनी शक्ति के साथ, जो उसे श्रीमद्भगवद्गीता की स्थिरप्रज्ञता प्रदान करती है और उसके साहित्यकर्म को सात्त्विक सिद्ध करती है। उसे पता होता है कि पुण्य कर्म का फल सात्त्विक और निर्मल होता है, राजस् कर्म का फल दु:ख तथा तामस् कर्म का फल अज्ञान का अंध कार -

कर्मण: सुकृतस्याहु: सात्त्विक निर्मल फलम्।
रजसस्तु फलं दु:खमज्ञान तमस: फलम् ।।16।।
गीता, चतुदर्श अध्याय

उसे पता होता है कि यंत्रों को हम किस प्रकार उसके वास्तविक उद्देश्य (सतोगुणी, मानवीय) की रक्षा करते हुए प्रयुक्त कर सकते हैं और किस प्रकार समाज को हावी हो रही रजोगुण-तमोगुणी यांत्रिक प्रवृत्तियों को सतोगुणी प्रकाश द्वारा असत् से सत् तमस् से ज्योति और मृत्यु से अमृत की ओर ऊर्ध्वगमित कर सकते हैं और किस प्रकार हम अगर यंत्रवत् बन भी जाते हैं, तो सिर्फ इसी सतोगुणी मानवता के संवर्धनार्थ और ऐसे साहित्यकारों की कृतियाँ किसी भी विधा में एक श्रेय है, प्रेय नहीं।

कविता

तल्ख होती जिन्दगी

डॉ. अलका अग्रवाल
ऐसोसियेट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश
मो. : 05921252425

तल्ख होती जिन्दगी
दुश्वारियाँ कम होती नहीं
इंतहा होती गमों की
कयामत भी आती नहीं।
लम्हा-लम्हा रीता सा
वक्त का पहिया रूकता भी नहीं
पल-पल दरकता
शीश-ए-दिल टूटता भी नहीं।
जाने कब किस मोड़ पर जिंदगी की शाम हो जाए
चल दिए जो कदम साथ
बस वहीं सांसों की सरगम ठहर जाए।
कब चाहता है इन्सान कि अनजानों से पहचान हो जाए
पर करे जब अनचाहे कहीं किसी अजनबी से मुलाकात हो जाए
करीब होकर भी मयस्सर न हो जब अपनो का अपनापन
कैसे करेगा फिर ए-दिले-नादां दूर तु अपना सूनापन।
बेजार तड़पते दिल को मिल जाए मंजिल कहीं,
ऐ खुदा बख्श दे नूर, टूट न जाए 'अलमिका' कहीं।

आखिर कब तक...

कुमार मृगांक
पंचगछिया, पटोरी, सहरसा
मो. : 08252651819

लोगों के हाहाकार को
क्रंदन और चीत्कार को
धूमिल हो रहे सपनों को
खो रहे अपनों को
बेबसी से देख रहा है सावन
आखिर क्यों सिसक रहा है सावन
प्रगाढ़ हो रहे हाहाकार को
विस्मय और अंधकार को
भावनाओं के बहाव को
विलाप और अभिशाप को
अपने अन्दर समेट रहा है सावन
आखिर क्यों सिसक रहा है सावन
विक्षिप्त लाशों को
लोगों के एकता को
की जा रही दूआओं को
सजीवों के प्राण को
निकलते देख रहा है सावन
आखिर क्यों सिसक रहा है सावन
कर्त्तव्यविमुखता के मिसाल को
फैल रहे भ्रष्टाचार को
दरिंदगी और हिंसात्मक व्यवहार को
तिल-तिल कर जल रहे आशाओं को
निराशाओं में बदल रहा है सावन
आखिर क्यों सिसक रहा है सावन
स्थूल हो रहे हाहाकार को
मंद हो रहे चीत्कार को
शर्मींदगी और घिनौनेपन के हद को
छोर पीछे जा रहा है सावन
लेकिन फिर से होनेवाले प्रहार के लिए
सीना तान तैयार होगा सावन
आखिर कब तक सिसकेगा सावन।

लघुकथा

हेल्थ सेंटर

उमाकान्त भारती

भागलपुर, बिहार

नीलम अपने बीमार पति सुरेन्द्र को अपनी कार से हेल्थ सेन्टर ले जा रही थी। गाड़ी उसका ड्राईवर गिरधारी चला रहा था।

सुरेन्द्र गहरी बेहोशी के आलम में थे।

रास्ते में पति की नब्ज की गतिशीलता के बारे में उसे संदेह हुआ। उबड़-खाबड़ सड़क पर चलती कार में निरंतर झटके लग रहे थे। इसलिए पति के दिल की धड़कन का अता-पता नहीं मिला। तब उसने बदहवास स्वर में ड्राईवर से कहा - ''गिरधारी! जरा गाड़ी रोकना।''

उसने गाड़ी खड़ी करके साहब को देखा - ''मैडम! इनकी नब्ज चल रही है, लेकिन दिल धड़-धड़ कर रहा है।

उसने पुनः दबी जबान में झिझकते हुए कहा - ''यहाँ से एक-दो सौ मीटर पर सरकारी अस्पताल है। इनकी नाजुक स्थिति के मद्देनजर तत्काल इसमें भर्ती करवाना उचित होगा।''

नहीं! यहाँ का इलाज राम भरोसे होता है। हेल्थ सेन्टर ही चलो थोड़ी दूर पर ही तो है। सिर्फ वहाँ पहुँचने की देर है। पहुँचते ही सब काम फटाफट होने लगता है। वहाँ का इलाज काफी महंगा है, लेकिन होता है परफेक्ट।

हेल्थ सेन्टर किसी फाईव-स्टार होटल जैसा ही बहुमंजली और भव्य था। प्रवेश द्वार पर चमचमाती सफेद वर्दी में एक बंदुकधारी गौरखा मुस्तैद खड़ा था। उसने नीलम से कहा ''मैडम! अंदर जाकर भर्ती-पुर्जा बनवा लीजिए पहले। तब हम मरीज को अंदर दाखिल होने देगा। यहाँ का यही दस्तूर है।''

पाँच सौ रूपये जमा करने पर मरीज को अंदर लाने का प्रवेश-पत्र मिल गया।

बड़े डॉक्टर ने सुरेन्द्र की जाँच-पड़ताल करने के बाद नीलम से कहा - ''पचास हजार रूपये अग्रिम जमा करना होगा। तब इलाज प्रारंभ होगा।''

उसने तुरंत रूपये जमा कर दिए।

डॉक्टर साहब! क्या हुआ है मेरे पति को।

ब्रेन हेमरेज... हाइपर टेंशन की वजह से।

बच जायेंगे न।

अगर चौबीस घंटे बच गए, तो हम इन्हें बचा लेंगे।

मनुष्य जब सभी तरह से हार जाता है, तब वह पराशक्ति की शरण में जाता है। उसकी समझ में भी जब कुछ नहीं आया कि अब क्या करे, तो वह अपने पति के जीवन-रक्षा के लिए व्याकुल मन से अपने इष्ट देवी-देवताओं को मनौतियाँ कबूलने लगी।

एकाथ घंटे में बड़े डॉक्टर पुनः आए! उनके पीछे जुनियर डॉक्टर की एक पूरी टीम थी। उनलोगों ने पुनः सुरेन्द्र की गहन जाँच की। आपस में कुछ देर गिटपिट बाते हुई। तब बड़े डॉक्टर ने शुष्क स्वर में नीलम से कहा - ''कंडीशन आउट ऑफ कंट्रोल! अधिक से अधिक आधे घंटे के मेहमान हैं आपके पति! अतः आप इन्हें घर ले जाइए। वैसे मैंने इन्हें सरकारी अस्पताल रेफर कर दिया है।''

नीलम ने गिड़गिड़ाते हुए उनसे कहा - ''यहीं रहने दीजिए न! ऐसी हालत में कहीं और ले जाना ठीक नहीं - ''नहीं। हम ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि यहाँ मृत्यु होने पर मेरे इस हेल्थ सेन्टर का रेकार्ड खराब होगा। इसलिए हम जान - बुझकर जिंदा साँप नहीं निगल सकते। सॉरी! ...हुक्म सुनाकर बड़े डॉक्टर तेजी से बाहर निकल गए इसके तुरंत बाद ही जब कंम्पाउंडर सुरेन्द्र की नाक से ऑक्सीजन का पाईप विलग करने लगा, तो नीलम ने डपटकर उससे कहा - ''ठहरो। ऑक्सीजन पर चलने वाले मरीज से ऑक्सीजन छीनना भयंकर अपराध है।

कम्पाउण्डर घबड़ा गया। उसने हकलाते हुए कहा - ''मैडम! हम तो हुक्म के गुलाम है।''

''मैं बड़े डॉक्टर से बात करने जा रही हूँ। मेरी वापसी तक यथास्थिति बनी रहे, अन्यथा आपकी खैर नहीं कम्पाउण्डर। फिर उसने अपने ड्राईवर से कहा - ''गिरधारी! साहब के पास ही रहना।''

बड़े डॉक्टर अपने चेम्बर में नहीं थे। अतः पाँच-छः मीनट प्रतीक्षा करने के उपरांत वह झपटते हुए वापस पलटी कमरे में घुसते ही उसने वहाँ बड़े डॉक्टर को देखा। वे उसके पति के बेड पर पड़े मरीज की नाक में ऑक्सीजन की पाईप नीकोप्लास से चिपका रहे थे। लेकिन नजदीक जाने पर उसने देखा कि बेड पर उसके पति नहीं थे, कोई दूसरा ही मरीज था।

हेल्थ सेन्टर के बाहर कार के पास खड़ा होकर गिरधारी रो रहा था।

कविता

गर्मी

मंजुल भटनागर

1

जेठ दोपहरी
गूंजती सन्नाटा
लूँ के थपेड़े
मौन रास्ता
दूर कहीं पानी होगा
ऐसी ही कुछ
मृग मरीचिका
खेत खलिहान ताकते
बेबस किसान
भविष्य के स्वप्न
बंद कमरे
वातानुकूलित
मौसम को पकड़ने का
शायद कोई लतीफा

2

ताप बढ़ता
रेत तपती
और तपते जंगल
तमतमा कर
सूरज बरसता
आज हो या कल
ईंट के जंगल
बनें भट्टी
किस ठाँव जाऊँ
सोचती मुश्किल
लूँ के थपेड़े तन जलाएँ
पेड़ भी व्याकुल
ताल खाली, नदी सरकती
गर्भ में हरपल
परिन्दें की प्यास भटकाती
चैन खोता हरपल

3

चाँद भी धुंध ओढ़े
तक रहा बेबस
चांदनी भी बरस रही
अनथक
मौसम का रौब चल रहा
बेझिझक
पाखी भी त्राहि-त्राहि कर रहा
अनवरत

कहीं से चैन बटोरूँ मैं
सोच रही बेबस
बाँट दूँ मुट्ठी भर हवा शीतल
और सूरज को कर दूँ जल्दी अस्त।

कविता

पुकार

ई. नवनीत पाण्डेय
ओडिशा
मो. : 9696259604

दे रही आवाज है माँ भारती
पुकार रही तुमको ऐ महारथी
रण में तू ही पार्थ, तू ही सारथी
कर रही उद्घोष ये माँ भारती

मन कि याचना का न मनन करो
माँ के दुश्मनों का तुम दमन करो
या कि रण में खुद के प्राण त्याग दो
वंदे मातरम का तुम नमन करो

ना मिटेगा माँ के भाल का तिलक
भारती का मान होगा हर फलक
सरे जग में भव्य होगी भारती
विश्व भी उतारता हो आरती

तुम हो कर्णधार भारत वर्ष के
कह रहा अवाम सारा हर्ष से
तुमको ही बचानी आज लाज है
भारती को तुझपे ही तो नाज है

तू भगत, राजगुरु का अवतार है
आजाद की रूधिर का तू आग है
माँ के भाल का गौरव है तू
चल पड़ो तुम ये तेरा सौभाग्य है।

गज़ल

हाल-ए-दिल

शाकिर खान
शाहीन बाग, नई दिल्ली।
मो. : 09999259199

इस तबस्सुम को गमों में लुटा मत देना
कोई आंसू का मोती आँखों से गिरा मत देना..
ख्वाब में आये हैं दोस्त थोड़ा वक्त निकालकर
गुफ्तगुं जारी है नींद से जगा मत देना..
शहजादा कोई आएगा है उम्मीद उसको भी
जमाने की हकीकत उसे बता मत देना...
घोंसले गिर चुके इनके तरक्की की आंधी में
जो बैठे हो पंछी मुंडेर पर उड़ा मत देना...
इस बज़्म में 'शाकिर' तमाशाबीन बहुत हैं
हाल-ए-दिल अपना खुद को भी सुना मत देना।

आंचलिक कहानी

आवरण

डॉ. प्रतिभा राजहंस
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर
मो. : 9939721764

लेकिन कैसे ? सुबोध के भोले मुखड़े पर उसको कैसे इस तरह उभर आया कि वह स्वयं प्रश्नवाचक सा दीख पड़ने लगा। कि देवर-भाभी में शादी...। आप जो-जो कहती हैं, वो सब सही है। मान भी लेता हूँ मैं लेकिन, यह सब होगा नहीं। मैं बिगड़ कर बोली। तुम्हारा घर तितर-बितर हुआ जा रहा है। माँ अन्नपूर्णा जैसी तुम्हारी भौजी पागल होकर भूत-प्रेत और देवी-देवता को खेला रही है। गाँव-जवार के शोहदे उस पगली को टिटकारी मार रहे हैं। तीन-तीन दुधमुँहे बच्चे बिलट रहे हैं और तुम कहते हो होगा नहीं।...होगा कैसे नहीं ?

सुबोधबा चुप था। चुप ही रहा।

मैं अपनी रौ में बोलती रही।

और बोलो, अगर यह होता ही है तो कौन सी दुनिया उलट जाएगी?

तब से होगा नहीं, होगा नहीं की रट लगाए जा रहा है।

बता, क्या नहीं होगा? और कैसे नहीं होगा?

मैं निर्णयात्मक मुद्रा में आ गई और वह भावुक हो उठा।

सोनी मम्मी ऽ .....।

आवाज आँसुओं में डूबकर लरज गई उसकी। आँखे डबडबा गईं।

अरे, तुम तो औरत की तरह रोने लगे, भाय।

मैंने उसे संभालने की कोशिश की।

वह मेरी भौजी नहीं, माँ जैसी है मेरी! वह भावुकता में बहता जा रहा था।

माँ जैसी है। पर, माँ नहीं है। मैं फुसला रही थी। फिर भी आवाज जरा सख्त-व्यावहारिक ही रही।

देखो, सुबोध! दुनिया केवल भावना से नहीं चलती। वह व्यवहार से चलती है और व्यावहारिकता ठोस विचारों के बिना संभव नहीं।

मुझे मालूम है, तुम बहुत बार कह भी चुके हो कि तुम्हारी भौजी तुम्हें बेटे जैसा मानती है। दो साल बड़ी भी है तुमसे।

हाँ!

अब जाकर उसकी मुँह से आवाज निकली।

तो इस बात को वह कहाँ नकारती है?

वह भी तो इसी कारण संकोच कर रही है। कहो, खुलकर अब भी तुमसे कुछ बोली है? बोलो

नहीं। ना ऽऽ अ.... भौजी यह सब कैसे कह सकती है?

...यह तो आप.....।

वह तुमसे कभी कहेगी भी नहीं।

लेकिन, अगर ऐसे ही चलता रहा तो ऽ...। सोचो, आगे क्या होगा?

अब और क्या होगा? सब तो चौपट हो गया। खत्म हो गया सब।

वह रो पड़ा।

सुबोध! सुन, तुम यहाँ से शुरू कर सकते हो।

कुछ क्षण चुप रहकर उसके चेहरे पर उतरते-चढ़ते भावों को पढ़ती रही।

पल भर के लिए एक हल्की सी चमक उसके भोले मुख पर फैल कर विलीन हो गई।

तुम कहते हो न कि तुम्हारा घर स्वर्ग जैसा था। लक्ष्मी बनकर, तुम्हारी भौजी उसका सार-संभार ऐसी करती थी। बाल-गोपाल जैसे प्यारे-प्यारे बच्चे तुम्हारे आँगन में किलकते रहते थे। अपने भतीजे-भतीजियों को शहरी बच्चों की तरह पढ़ा लिखा कर बड़ा आदमी बनाना चाहते थे और आज वही घर खंडहर की तरह उजाड़ लगता है। पगली बनी चीथड़ों में लिपटी तुम्हारी भौजी।

भूत-प्रेत का खेल खेलती हैं। बच्चे बिलट रहे हैं।

बोलो, कहते हो न!

कहेंगे क्या, आप तो देख आई हैं सबकुछ।

मैं केवल देख ही नहीं आई, समझ भी आई हूँ सबकुछ।

उस दिन मैं तुम्हारे साथ गई थी न तुम्हारे घर? जो घर हरदम गोबर-मिट्टी से ताजा लिपा-पुता होकर मेरे पक्का मकान से अधिक पवित्र लगता था,

वही घर भूत का डेरा बन गया है।

टूटे-पिचके बरतन-बासन, कपड़ा-लत्ता, बच्चों की किताब प्लेटे...।

जानते हो सुबोध, तुम्हारी भौजी भूत-प्रेत बनकर तो तुम्हारे सामने बरतन कपड़े फेंक रही थी न। लेकिन, जब तुम वहाँ से चले गए तो उन्हीं चीजों को समेटकर फूट-फूटकर रोने लगी थी वो।

यही तो मैं कहता हूँ। भूत उतरने पर फिर ठीक से सबकुछ करती है भौजी।

भूत नहीं है यह, पगले?

वह बेवकूफ की तरह मेरा मुँह ताकने लगा।

वह अपनी चिन्ता बतलाना चाहती है तुझे?

कौन, भूत ?

नहीं, तुम्हारी भौजी।

भौजी कुछ नहीं चाहती है। भौजी क्या चाहेगी भला? वह तो लक्ष्मी है, साक्षात लक्ष्मी। अपने दुख करके भी सबको सुखी रखने वाली...। वह तो जब-जब भूत.....।

जरूरी बातों को भूत के जाल में मत उलझाओ।

मैं डपट कर बोली।

खैर, वह तुम्हारी तरह उल्लू नहीं है।

मतलब?

मतलब यह कि वह बाल-बच्चेदार औरत है। दैवयोग से विधवा हो गई है। तब भी वह अपने बच्चों का भविष्य सोचती है। लेकिन, यहीं पर उलझ भी जाती है। बेचारी....।

कैसे? .... मैं नहीं हूँ क्या उन्हें संभालने वाला?

अच्छा, बतलाओ, तुम्हारी भौजी के माँ-बाप उसका दूसरा ब्याह कराना चाहते हैं और तुम्हारी चाची तुम्हारे लिए लड़की देख रही है। है न ?

हाँ! इसमें बुरा क्या है?.... लेकिन, यह नहीं हो सकता, जबतक भौजी पर से भूत न उतर जाय।

ठीक है! अब यह बतलाओ कि भौजी का दूसरा आदमी उसके बच्चों को ठीक से रखेगा?

नहीं, सौतेला कहे? वह तो गोबर-करसी....। इसीलिए मैं अपने पास रखूँगा बच्चों को उन्हें नहीं जाने दूंगा मैं।

और तुम्हारी पत्नी उसके बच्चों को माँ का प्यार दे पाएगी?

इसीलिए, न तो तुम्हारी भौजी की शादी हो सकती है और न ही तुम किसी और लड़के से उन बच्चें को उतना प्यार दे सकते हो।..... ठीक कहती हूँ मैं?

आप तो सब बात ठीक्के कहते हैं। आप गलत क्यों..?

तो फिर तुम भी ठीक से सुनो। (जानें क्यों मैं उसके निजी मामलों में हस्तक्षेप कर रही हूँ - जैसा भाव मेरे मन में उभरा। उसी क्षण उसकी भौजी के करूणार्द्र नेत्र और याचना में फैले आँचल प्रत्यक्ष हो उठे। दीदी, अपन्हैं जों समझावें पारियै तऽ.... हम्में होकरा केना क कहबै? एक तऽ मुरूख अहीर, दोसरों ओकरौं माय दाखिल भौजी। हम्में केना..... मतर कि हम्में चुमौनों करियौं या कि सुबोधबा के बीहा करैय्यौं, दोनों में पिसैतै त येहे बच्चा बुतरू।'' कहते कहते उसका मेरे पैरों पर गिर पड़ना, संभलना और फिर स्थिर होकर कह उठना - ''अबें त हमरा लेल है बच्चा-बुतरू आरो सुबोधबा के लेल हेकरा सिनी कें है अहीर के बस्ती सें उठाय कें ऑफिस के कुर्सी पर बाबू बनावके बैठाना यहें टा सपना छै।.... सुबोधबा रं हिम्मतगरों आदमी कें छोड़ी कें हम्में कोन मुनसा के साथ करबै दीदी?

पल भर रूककर मैंने अपने को दृढ़ किया।

फिर अपनी तरह से उसकी भौजी की बात उसे कह सुनाई। वह गंभीर हो गया। चिन्ता से भारी पलकें झुकी ही रहीं।

तुम अधिक सोच-विचार नहीं करो, सुबोध। कैसे क्या होगा, इसकी जिम्मेदारी मेरी रही।

मैं उठती हुई बोली लेकिन वह बहुत देर तक वहीं उसी तरह विचारमग्न बैठा रहा

कह नहीं सकती कि दोनों के बीच के संकोच का आवरण कैसे हटा? पर, यह जरूर देखती हूँ कि आज चार बच्चों का बाप सुबोध पहले की ही तरह मस्ती से साइकिल की घंटी बजाता, गाना गुनगुनाता घर-घर दूध बाँटने आता है। उसके सोनू-मोनू और सोनी-मोनी अपने गाँव के स्कूल से निकलकर रोज साइकिल से भागलपुर अपने स्कूल आते-जाते है।

कविता

शिक्षा दान : अनुपम काम

अनामिका कुमारी
व्याख्याता
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बरारी
भागलपुर, बिहार - 812003

सबसे अनुपम काम जगत में,
शिक्षक द्वारा शिक्षा दान।
जहाँ गुरू-शिष्य के बीच है बनता,
संबंधों का सुंदर उद्यान।।

एक नजर पड़ते ही इन पर
श्रद्धावान इनको शीश झुकाते।
सदाचार की प्रतिमूर्ति बन,
ये हर के दिल में जगह बनाते।।

नेता, अधिकारी और संभ्रांत भी,
श्रद्धावश इनको शीश झुकाते।
जनक जननी से भी ऊँचा,
जग में है गुरू का स्थान।।

सब शिष्यों पर समदृष्टि रख,
विषयों का है ज्ञान कराते।
रह जाती यदि त्रुटि किसी में,
मन ही मन व्यथित हो जाते।।
स्वस्थ समाज निर्माण का,
इन पर है दायित्व बड़ा।
कर्तव्यों से हुए विमुख बिना,
यह अपने पथ पर सदा बढ़ा।।

कविता

गाँव की मचान से हिमालय भी छोटा है

बृजेश नीरज
छितवापुर रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश

खुशी है, गाँव अपने जा रहा हूँ
महक मिट्टी की सोंधी पा रहा हूँ

डगर पहचानती है, साथ हो ली
मैं छाले पाँव के दिखला रहा हूँ

फिज़ाओं में यहाँ रंगत अजब सी
भ्रमर सा फूल पर मँडरा रहा हूँ

सदा सुनकर मैं इन तन्हाइयों की
तेरी यादों से दिल बहला रहा हूँ

मधुर संगीत सा है इस हवा में
तभी तो खुद को मैं बिसरा रहा हूँ

नदी की धारा से ले चंद बूँदें
उसी में डूबता-उतरा रहा हूँ

मचानों पर जो मैंने चढ़ के देखा
हिमालय को भी छोटा पा रहा हूँ।

घरौंदा

मनोज 'कामदेव'
चन्दर नगर, गाजियाबाद
उत्तर प्रदेश
मो. : 9818750159

तिनका-तिनका चुनके मैंने एक घरौंदा बनवाया,
जीवन भर का सारा तजुर्बा आज इसमें लगवाया।

हर डाली के हर तिनकों से मैंने ईट बनाई,
हर ईटों को चिनके मैंने अमन का रंग भराई।।

घर के हर कोनों में मैंने धूप की चादर लगाई,
हर चादर के हर पोरों से एक सा ताप आई।।

हिलता जब भी पेड़ नया सा मन ये आहें भरता,
टूट ना जाये डाली कोई बिखर ना जाये नीड़ हमारा।।

बच्चों के मुंडेर के खातिर हवा से जा टकराया,
फौलादी पंखों को पाकर बारिश से लोहा मनवाया।।

धूल-धक्कड़ और बबंडर मेरी नीयत जान गई,
मेरे तिनके के महल को अपना कहके बचा गई।।

ग़ज़ल

अनन्त आलोक
ददाहू, सिमौर, हिमाचल प्रदेश
मो. : 9418740772

मंजिल एक फिर उल्टी दिशाओं में क्यों दौड़ रहे,
तुम्हारे भीतर है भगवान क्यों बाहर हाथ जोड़ रहे।
गाँव की महिलाएं सारी खेत में हल चलाती हैं,
ये कैसे मर्द हैं मौला मजे में मंजे तोड़ रहे।
हुए हम बिन कहे तेरे और तुम हो गए मेरे,
कुंडलियों के नैन मिले पुरोहित रिश्ता जोड़ रहे।
गम के बादल क्यों छाए फिजा की आँख नम क्यों है,
नदी के अश्क सूख गए समंदर हंस छोड़ रहे।
क्यों चुनते राह सरल साथी यूँ क्यों राह बदलते हो,
सयाना उतना जिसकी जीस्त में जितने मोड़ रहे।
बदल गए आनन्दोत्सव भी बदल गए जन्मोत्सव भी,
किये थे दान पुण्य कभी आज गुब्बारे फोड़ रहे।

ग़ज़ल

सोमवीर 'नामदेव'
मो. : 9321283377

यु रूठ कर हमसे वो ना जाते कुछ और बात होती
बजाय रूठने के उनको मनाते कुछ और बात होती।
मंद मंद मुस्कुराने से भी तो कुछ नहीं होने वाला
खिल खिलाके जो हंसते तो कुछ और बात होती।
लहू के छींटो से रोज किये हैं दामन लाल हमने
प्रेम की बारिश में नहाते तो कुछ और बात होती।
बिछड़ के उनसे जिंदगी गुजारी अंधियारों में हमने
पल भर आ जाते साथ तो कुछ और बात होती।
मन की मन में दबाकर रखी बात सदा 'नामदेव'
हाल-ए-दिल खोल दिखाते तो कुछ और बात होती।

ग़ज़ल

डॉ. मंजरी पाण्डेय
सारनाथ, वाराणसी
मो. : 9973544350

जग मशीनी हुआ इंसा बेकाम है
नित नए खोजों का ये अंजाम है।

होंठ पे मय के छलकते जाम हैं
नाम उनके ही गुजरती शाम है।

कर गए जो काम करना था किया
अब यहां आराम ही आराम है।

सिल के मुंह बैठे रहो तो ठीक है
खुल गया जो मौत ही ईनाम है।

हाथ के छालों को देखा 'मञ्जरी'
फूट कर भी मिल न पाया दाम है।

चिंतन

चिंतन धारा

डॉ. अचल भारती

बांका, बिहार

हम चिंतनशील प्राणी जब जब मानवता को संभाले, उसकी रक्षा में सुदीर्ध जीवी होने का आशीर्वाद देने चले हैं और उसकी अस्मिता को संवेदना के हाथों सजाने में लगे हैं, तब-तब उसके आगे से उछाले गए तमाम प्रश्न जलते नजर आए है और हम निश्चय ही बदलते समीकरण में अपने को जुड़ाकर छुट्टी पा लिए हैं,

यह कितना बड़ा सच है कि हम नितान्त खोखला होकर भी अनुग की गहराई में जीने का आदर्श लिए खड़े हैं और जले प्रश्नों की शंख हमारे नंगे वदन को छू-छूकर हमारी ही निरीहता पर अट्टाहास कर रही है। हम निश्चित है अपनी चेतनता पर, चिंतन धारा की मानी हुई सर्वजीत पर, जबकि कड़ुअे धुँए से घुट रहा है आकाश का दम।

हमारा संकल्प बढ़ा है सिर्फ एक ललक के साथ ही अगर हम किसी की सुख दु:ख की अनुभूति में साथ हो लिए हैं तो मानवीय संबंधों को अनछुआ करके ही, हमारा विवेक जब-तब मुँह खोलता है मानवता के लिए, हम उल्लासित मन से उस ओर बढ़ते अवश्य हैं लेकिन जिजीविसा का लोभ, संवेदना के यथार्थ को इतना भीत बना देता है कि हमें किसी के मिटने का मान नहीं होता, न ही पश्चाताप, उल्टे काल्पनिक जगत में उसकी रक्षा होते देख लेते हैं तथापि हाथ उठा-उठाकर आदमी के होने की पहचान कराते हैं और कहते भी हैं मूल्य बदल रहे है, समीकरण हल हो रहे हैं, आस्था बदल रही है आदि-आदि, जबकि वे प्रश्न जो समय के साथ उछाले गए हैं, जल-जलकर हमारी ही पशुता पर काई चढ़ा रहा है और हम हैं कि पशु होने की बात सधा ही नहीं पाति।

लघुकथा

पानी बोले तो क्या बोले

डॉ. अनुज प्रभात

फारबिसगंज, अररिया, बिहार

मो. : 9470023249

प्यास से तड़पती अपनी बेटी के लिए उसने नल की टोंटी खोली। पानी की एक बूंद भी नहीं। दौड़कर शर्बत बेच रहे दुकानदार के पास गई.. गिड़गिड़ाई....'' भैया थोड़ा पानी दे दो। मेरी बच्ची प्यास से तड़प रही है।''

उसने उसके कपड़े को देखा.... फटे-चिटे.... मैले से.. और झिड़क दिया - चल हॅट यहाँ से....।

उसने एक बार विस्लरी बोतल पीते, सफेद खादी कपड़े पहने वहाँ के लोगों की ओर कॉतर आँखों से देखा।.... मगर कोई प्रतिक्रिया नहीं।

वे खादीधारी लोग लम्बी गाड़ी में बैठ गये और बिस्लरी को सड़क पर फेंक दिया। पानी शेष था अब भी बोतल में।

वह दौड़ी.... बोतल में बचे पानी की ओर। तभी पीछे से आती गाड़ी बोतल को रौंदती चली गई। उस माँ की आँखे डबडबा गई, आँसू बह निकले रौंदे गये बोतल से निकलते पानी की तरह आखिर पानी! बोले तो क्या बोले...।

कविता

विश्वास

सृमित्रा पारीक
अजमेर, राजस्थान

आज
शब्द-शब्द महक रहा
विश्वास के फूलों के खिलने से
फफोले हो जाते हैं जीवन की पगथलियों में
जब ना भरोसाई का तेजाब डाल दिया जाता है
सरसाते..फलते रिश्तों पर
स्नेह पकने लगता है पीप बन कर
रिसने लगता है हर्षाते पलों से
समर्पण नासूर बन कर
दायित्वबोध ही
लहुलुहान होकर
चलने का हौसला देता रहता
नहीं तो बड़े होने का
अहंकार तो कब का ही
खजूर का पेड़ बना देता
आज
मैं उन महक रहे फूलों की
मादक महक से
सपनों की इत्रदानी
भर लूँ.... जी भर के!

कुबड़ी आधुनिकता

ई. दीप्ति शर्मा
दयाल बाग, आगरा,
उत्तर प्रदेश

मेरा शहर खाँस रहा है
सुगबुगाता हुआ काँप रहा है
सडांध मारती नालियाँ
चिमनियों से उड़ता धुआँ
और झुकी हुयी पेड़ों की टहनियाँ
सलामी दे रही हैं
शहर के कूबड़ पर सरकती गाड़ियों को
और वहीं इमारत की ऊपरी मंजिल से
काँच की खिड़की से झाँकती एक लड़की
किताबों में छपी बैलगाड़ियाँ देख रही है
जो शहर के कूबड पर रेंगती थीं
किनारे खड़े बरगद के पेड़
बहुत से भाले लिये
सलामी दे रहे होते थे।
कुछ नहीं बदला आज तक
ना सड़क के कूबड़ जैसी हालात
ना उस पर दौड़ती / रेंगती गाड़ियाँ
आज भी सब वैसा ही है
बस आज वक्त ने
आधुनिकता की चादर ओढ़ ली है।

कविता

माँ

संजय कुमार गिरी
करतार नगर, दिल्ली
मो. : 9871021856

'माँ', जिसकी गोद में
बचपन बीता, बड़ा हुआ
जिसके आँचल तले
सुनहरे स्वप्न में खोया
न जाने कितनी शैतानियाँ की

न जाने कैसे-कैसे माँ ने
मुझे पाल-पोस कर
अपने खून से सींच-सींच कर
इस लायक बनाया कि मैं
उसकी बुढ़ापे की लाठी बनूं

किन्तु में स्वार्थी
प्रिया के कहने पर
उस बूढ़ी माँ को, ठुकरा कर
छोड़ दिया तिल-तिल तरसने को
और खुद वासना में लिप्त
अपनी प्रिया की गोद में
उसकी सुनहरी जुल्फों से
खेलता रहा, उलझता रहा

उधर वह बूढ़ी माँ
किस-किस के आगे
गिड़गिड़ाती, हाथ पसारती
किन्तु मैं इन सब से
बेखबर केवल अपनी प्रिया
के खयालों में उसकी हर
तन्मना पूरी करता रहा
आह आज मैं
जीवन के किस मोड़ पर आ गया
मेरी सारी शिराएँ शिथिल पड़गई हैं
आँखों के समक्ष घोर अन्धकार
त्वचा का रंग लुप्त हो गया है
कोई भी अब मेरे नजदीक
आने से घबराते, मैं एकटक
दीवार पर टंगी तश्वीर निहारता
और शिशकता अपने कर्मों पर

बेचारी बूढ़ी माँ, इसी तरह
न जाने कितनी तकलीफों
का सामना कर-कर के
इस दुनिया से चल बसी होगी,

मैं और मेरा घर
केवल रह गया सूना
शमशान के सामान
यही है, हाँ यही है
मेरे अत्याचारों और
दुष्कर्मों का फल

आलेख

राजा राम मोहन राय ने भंग किया अंग्रेज कलक्टर का दंभ

डॉ. शिव शंकर सिंह 'पारिजात'
भागलपुर, बिहार
मो. : 9431481336

हमारे देश के इतिहास में राजा मोहन राय की पहचान भारतीय पुर्नजागरण आंदोलन के जनक, आधुनिक युग के अग्रदूत तथा भारतीय राष्ट्रीयत के देवदूत के रूप में है जिन्होंने रूढ़िवादी परम्पराओं का विरोध करते हुए नारी-उत्थान और सती-प्रथा उन्मूलन की मशाल जलायी व भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों के मर्म को प्रतिस्थापित किया। इन विरल विशिष्टताओं के साथ-साथ राजा राम मोहन राय अन्याय, पक्षपात और भेदभावपूर्ण दमनात्मक मानसिकता के प्रबल विरोधी भी थे। उनके इस दृढ़ प्रतिज्ञ, स्वाभिमानी और निडर व्यक्तित्व के ये शुभ्र धवल पक्ष बिहार की भूमि पर घटित एक घटना से उद्‌भाषित हुए, जिसका मंच बना था - भागलपुर।

यह जानकारी बहुत कम लोगों को होगी कि राजा राम मोहन राय ने भागलपुर में रहकर नौकरी भी थी और एक सरकारी कर्मचारी होते हुए भी अपनी अस्मिता और स्वाभिमान को ठेस पहुँचने पर तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर के विरूद्ध गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो से शिकायत की थी जिसमें अंतत: उनका पलड़ा भारी रहा और अंग्रेज कलक्टर को हुकूमत से फटकार मिली थी। आज से 204 वर्ष पहले और आजादी थी 1857 की पहली लड़ाई से भी 48 साल पूर्व परतंत्र भारत में राजा राम मोहन राय ने अपने स्वाभिमान और निडर व्यक्तित्व का परिचय दिया, वह आज आजादी के 66 वर्ष बाद भी स्वतंत्र भारत में अकल्पनीय प्रतीत होता है जहां 'निर्भया' पर हुए अत्याचार का जायज विरोध करनेवालों पर भी लाठियां बरसायी जाती हैं। डॉ. रमन सिन्हा ने अपनी सद्‌य: प्रकाशित पुस्तक 'भागलपुर अतीत एवं वर्त्तमान में राजा राम मोहन राय से जुड़े इस प्रकरण का बड़ा ही रोचक विवरण दिया है।

राजा राम मोहन राय का जन्म कृष्णनगर (हुगली जिला के निकट राधानगर नामक गांव में 22 मई, 1722 में हुआ था। उनके पिता राधाकान्त राय नबाब सिराजुद्‌दौला के शासन में एक अधिकारी थे। राम मोहन ने पटना में फारसी-अरबी तथा वाराणसी में संस्कृत का अध्ययन किया। सन् 1815 में कलकत्ता में 'आत्मीय-सभा' तथा सन् 1828 में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की सन् 1818 में कुत्सित सती-प्रथा के उन्मूलन हेतु आंदोलन किया जिसके परिणामस्वरूप सन् 1829 में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने सती-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया जो कि भारतीय इतिहास में एक युगांतकारी घटना मानी जाती है। सन् 1830 मं दिल्ली के तत्कालीन बादशाह अकबर द्वितीय (1806-1837) ने उन्हें 'राजा' की उपाधि से नवाजा।

राम मोहन राय की डिगबी साहब नाम को एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट से पुरानी पहचान थी जिसने उन्हें बाद में सरकारी नौकरी पर मुंशी (निजी सहायक) के रूप में रख लिया। राम मोहन राय ने डिगबी साहब के साथ रामगढ़ (हजारीबाग), जसौर, रंगपुर सहित भागलपुर में भी काम किया। भागलपुर कलेक्टेरियट में वे सन् 1808 से 1809 तक 'दीवानी सिरिस्तेदार' (कार्यालय अधीक्षक) के पद पर कार्यरत रहे। हालांकि वे भागलपुर में एक वर्ष तक ही रहे, पर इस अल्प अवधि में ही कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुई जिनका न सिर्फ उनके जीवन में

वरन् भारतीय इतिहास के लिये भी महत्त्वपूर्ण बन गयी। आज भागलपुर समाहरणालय परिसर में जिलाधिकारी के कार्यालय कक्ष के निकट स्थापित उनकी प्रतिमा पुरानी स्मृतियों को ताजा कर देती हैं।

भागलपुर में अंग्रेज कलक्टर के साथ घटी घटना का विवरण देते हुए इतिहासकार डॉ. रामन सिन्हा कहते हैं - 'भागलपुर में 1809 में हुई एक घटना लगभग दबी हुई है जब राजा मोहन राय का भागलपुर के तत्कालीन कलक्टर सर फ्रेडरिक हेमिल्टन से विवाद हुआ था। ज्ञात हो कि उस समय भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन था। बिहार भी बंगाल के साथ अविभाजित था। विवाद का घटना क्रम इस प्रकार है कि एक दिन राम मोहन राय पालकी पर चढ़कर गंगा घाट (संभवत: वर्त्तमान आदमपुर घाट) से शहर की ओर जा रहे थे। उसी समय भागलपुर के कलक्टर हेमिल्टन साहब घोड़े पर सैर के लिये निकले थे। देशी बाबू राम मोहन पालीकी में पर्दे से छिपकर बैठे थे। इसलिये कलक्टर को देख नहीं सकें। उस समय के शिष्टाचार के अनुसार भारतीयों को अंग्रेज अधिकारियों के आगे सवारी से गुजरना मना था। एवं अभिवादन करना अनिवार्य था पर राम मोहन वैसा नहीं कर सके। आग बबूला हो कलक्टर साहब ने पालकी रूकवाकर राम मोहन को बुरा-भला कहना आरम्भ कर दिया। राम मोहन ने बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन अंग्रेज कलक्टर का गुस्सा शांत नहीं हुआ। जब देखा कि उनका गुस्सा ठंडा नहीं हो रहा है, तो आगे समझाना व्यर्थ समझकर राम मोहन राय हेमिल्टन साहब के सामने ही पालकी पर पुन: सवार होकर आगे निकल गये। राम मोहन ने कलक्टर की इस करतूत को अपना अपमान समझा। तब उन्होंने 12 अप्रैल, 1809 को भागलपुर कलक्टर सर फ्रेडरिक हेमिल्टन के व्यवहार के विरोध में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो के पास एक लम्बी याचिका भेजी। शायद यह उनकी पहली अंग्रेजी रचना थी। यह घटना राम मोहन राय के साहस एवं स्वाभिमान की परिचायक थी।'' (भागलपुर अतीत एवं वर्त्तमान, पृ. 57.-58)

गवर्नर जनरल को लिखा राजा राममोहन राय का यह पत्र आज एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया है जिसमें उन्होंने पूरी बेबाकी के साथ घटना का पूरा विवरण देते हुए स्पष्ट लिखा कि एक अंग्रेज सरकारी अधिकारी के द्वारा, उनकी नाराजगी का चाहे जो भी कारण हो, किसी देशी प्रतिष्ठित सज्जन को इस प्रकार बेईज्जत किया जाना एक असहनीय यातना है और इस प्रकार का दुर्व्यवहार बेलगाम स्वेच्छाचार ही कहा जायेगा।

राजा राममोहन राय के आवेदन के मजमून ने गवर्नर जनरल और कलकत्ता (वर्त्तमान कोलकाता) के फोर्ट विलियम के अधिकारियों पर प्रभावकारी साबित हुआ। गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने इस पर अपने न्यायिक सचिव को भागलपुर के मजिस्ट्रेट से घटना की पूरी रिपोर्ट तलब करने के आदेश दिये। इस रिपोर्ट के साथ संलग्न होकर भागलपुर के कलक्टर का भी बयान आया जिसमें राम मोहन राय को अपमानित करने या उनके साथ गाली-गलौज की बात से पूरी तरह इंकार किया गया था। पर जांच में कलक्टर की यह बात झूठी पायी गयी। अंतत: गवर्नर जनरल के न्यायिक सचिव ने भागलपुर के मजिस्ट्रेट को इस तीखी टिप्पनी के साथ पत्र लिखा कि वे आशा करते हैं कि सर फ्रेडरिक हेमिल्टन को अगाह किया जायेगा कि भविष्य में वे देशी लोगों के साथ वाद-विवाद में नहीं फसेंगे। इस संदर्भ ने कविगुरू रीवन्द्रनाथ टैगोर का यह वक्तव्य बड़ा ही माकूल लगता है कि राम मोहन युग में भारत में कालरात्रि उतर आयी थी। लोक भय-आंतक के भयानक साये में जी रहे थे। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव बनाये रखने के लिये उन्हें अलग-अलग खानों में बांट दिया गया था। उस काल रात्रि के समय राम मोहन ने अभयतंत्र का उच्चारण किया था। प्रतिबंधों को तोड़ फेंकने की कोशिश की थी।

लोकवाणी

दृष्टि-सृष्टि सृजनशील है।

डॉ. महेन्द्र मयंक
भागलपुर, बिहार
मो. : 9507172700

यह पथ
बड़ा कठिन है
पर
संकल्प प्रबल है।
दृष्टि सृजन एक अनल है
तपे तपाये शुक्ष्म कलम है,
'संभाव्य' एक शब्द कलश है
जिससे प्रस्फुटित छन्द बन्द है
दया, अश्विनी, आनन्द
विजय का हिमगिरि सा
चट्टान अटल है
तभी तो संभाव्य एक
शंखनाद है
संभाव्य आदित्य सा
क्षितिज व्योम में
ज्योति अमिट है।

संभाव्य की निरंतर बढ़ती ऊँचाई सदैव प्रशंसनीय

अभिनव अरुण
वरिष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी
मो. : 9415678748

संभाव्य पत्रिका दिनानुदिन अधिक आकर्षक और अधिक समृद्ध हो रही है।
संभाव्य की निरंतर बढ़ती ऊँचाई सदैव प्रशंसनीय है, रहेगी भी।

First of all I really congratulate you and your all team members for doing a wonderful job..

I am very fond to read as well writing in Hindi/ English magazines but a certain types of thinkers and writers always in today's magazines.... no scope has lift for young minds.

But your team is giving opportunities to young people.. It's good for our SAHITY AUR SAMAJ.

I am also looking for some VICHAR to express in SAMBHAVYA very soon.

- Prof. Deepak Sharma
University of Delhi

लोकवाणी

संभाव्य साहित्य जगत के लिए एक सुखद अनुभूति है

डॉ. दीपक शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. : 09811424200

सकारात्मक एवं तार्किक पत्रिका 'संभाव्य' का प्रकाशन संभाव्य परिवार के विशाल हृदय का परिचायक होने के साथ-साथ साहित्यिक जगत के लिए भी एक सुखद अनुभूति हैं।

यह मेरे लिए भी काफी प्रेरणादायक एंव सुखद अनुभव है कि मुझे संभाव्य से जुड़ने का मौका मिल रहा है। मैं आलेख लिखने में बहुत आनंद का अनुभव करता हूँ और 'संभाव्य' के लिए भी लगातार लिखते रहना चाहता हूँ।

संभाव्य के साथ जुड़ना बड़े ही गर्व का विषय

ई. नवनीत पाण्डेय
ओडिशा
मो. : 9692259604

मैं उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूँ तथा अभी जे. के. पेपर लिमिटेड, ओडिशा में इंजीनियर हूँ। संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक को पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यह पत्रिका कई मायने में हिन्दी की अन्य पत्रिकाओं से श्रेष्ठ है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'संभाव्य' रचनाकारों को नहीं, अपितु श्रेष्ठ रचनाओं को प्रकाशित करती है।

विश्व के 29 देश सहित भारत के 65 शहरों में पढ़ी जानेवाली हिन्दी पत्रिका 'संभाव्य' के साथ जुड़ना हमारे लिए बड़े ही गर्व का विषय है।

लोकवाणी

जीवन-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में संभाव्य

नंदलाल साह
प्राचार्य
आर्यकन्या इंटर स्कूल, खगड़िया, बिहार
मो. : 9471282858

संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से आज साहित्य अपने क्षेत्र में एक लंबे आत्मसंघर्ष के बाद अपने अस्तित्व में पुनः स्थापित होने जा रही है। आपका यह प्रयास सराहनीय एवं युगीन परिस्थितियाँ, विचारधाराओं एवं भाषारूपों से समग्र है। ज़ाहिर है 'संभाव्य' अपने रूप-शिल्प के आधार पर अपनी रचना-प्रक्रिया से हर प्रगतिशील चिंतकों के बीच सौंदर्य-दृष्टि की पुष्टि करेगी। साहित्य मूलतः मनुष्य के जीवन के अनुभव और उसके पारस्परिक सम्बन्धों, विचारों तथा प्रतिक्रियाओं को ही प्रतिबिंबित करता है। इसमें मानव-मन के भीतर समाये हुए जगत का जो वैविध्य है, उसके प्रकटीकरण का संवेदनात्मक प्रकारों से आलेखन किया गया है।

मैं इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

संभाव्य में चेतना के बीज का उद्‌गार

शंभुनाथ झा
प्राचार्य
महिला महाविद्‌यालय, भागलपुर, बिहार
मो. : 9905424890

'संस्थापक की कमल से' में निकले चेतना के बीज में संभाव्य के उद्‌गार दिखाई देते हैं। उसी के प्रस्फुटन, वर्धन और विकास से समस्त विश्वग्राम सौंदर्यबोध से अवश्यमेव आंदोलित होंगे। पूरी पत्रिका संभाव्य में सजीव संवेदनाओं का तरसा मूर्त-कथ्य है। आशा है - लोकप्रियता का शिखर देखूँ।

[मेरे उमड़ते–घुमड़ते विचार]

अप्रतिम सौंदर्य का अनुगमन करें

पृथ्वीलोक पर किसी चित्रकार का अवतार नहीं हुआ जो कृत्रिम रंगों से इंसान को सुंदर बना दे। वस्तुतः सुंदरता प्राकृतिक है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ सुंदर है, लेकिन इसे देखने के लिए दृष्टि और दृष्टिकोण में सौंदर्यबोध होना आवश्यक है।

संयम, सद्विचार, सदाचार, समभाव, शब्द–शिष्टाचार तथा ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ के प्रति यथोचित सम्मान और स्नेह जैसे नैसर्गिक रंगों से स्वयं को रंगने का प्रतिपल अभ्यास ही इंसान को सुंदर बनाता है।

जिसप्रकार जल की सुंदरता किसी प्यासे की प्यास बुझाने की योग्यता रखने पर निर्भर करती है, अग्नि की सुंदरता उसकी दाहकता और भस्म करने की योग्यता रखने पर निर्भर करती है, उसीप्रकार इंसान की सुंदरता जीवन और वाणी में संयम रखने; सदाचार का पालन करने; प्रत्येक पदार्थ के प्रति समानता का भाव रखने; शब्द–शिष्टाचार का प्रतिपल बोध रखने, ज्येष्ठ को सम्मान देने एवं कनिष्ठ को स्नेह से अभिसिंचित और अभिषिक्त करने की योग्यता होने पर निर्भर करती है।

आज ही चैतन्य बनें, सौंदर्यतत्त्व का बोध करें तथा नियमित अभ्यास से स्वयं को सुंदर बनाकर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का सौभाग्य बनें।

डॉ. जी. पी. सिंह
संपादक, संभाव्य

www.sambhavya.com